कल्याण

वर्ष ३८]   *   *   *   [अङ्क ५

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण—१,३८,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ २०२१, मई १९६४

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—अतिथिसेवक कपोतका बलिदान [कविता]	८८५
२—कल्याण ('शिव') ...	८८६
३—श्रद्धा और निष्कामभावका रहस्य (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...	८८७
४—प्रभुका स्वयं अपना दान [कविता]	८९३
५—उपनिषदोंकी भावधारा (श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय एम्० ए०) ...	८९४
६—मधुर	८९८
७—जीवन सफल करो [कविता] ...	९००
८—जगदम्बा श्रीसीताजी (श्रीहरेशचन्द्र अग्रवाल, एम्० ए०) ...	९०१
९—तुलसीके ब्रह्म राम (डा० श्रीगोपीनाथजी तिवारी एम्० ए०) ...	९०७
१०—मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् (प्राध्यापक श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र एम्० ए०) ...	९१२
११—माँ ! हाथ पकड़ लो (श्रीहरिश्चन्द्रजी अष्ठाना 'प्रेम')	९१५
१२—वट-सावित्री अमावस्या (श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)	९१९
१३—आदमीका बड़प्पन इस प्रकार नापा जाय ? (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)	९२०
१४—श्रीसत्यनारायणव्रत-माहात्म्य-कथा (० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी) ...	९२५
१५—काम-क्रोध-मद-लोभ सब नाथ नरकके पंथ (डा० श्री एल्० एन्० सक्सेना) ...	९२६
१६—'मैं'की शोध [कहानी] (श्री 'चक्र') ...	९२७
१७—चक्र कैसे थमे ? (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ...	९३०
१८—क्या मांस-मत्स्य-अंडा-भक्षण-प्रचार भी लोक-कल्याण है ? (श्रीकस्तूरमलजी बाँठिया) ...	९३१
१९—भयानक पशुवध ! (मन्त्री, भारत गो-सेवकसमाज, दिल्ली) ...	९३६
२०—भेड़ियाधसान विज्ञान-प्रवृत्ति (स्वर्गीय श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ...	९३९
२१—पढ़ो, समझो और करो ...	९४४
२२—हम कहाँ जा रहे हैं ? [कविता] टाइटल	चौथा पृष्ठ

चित्र-सूची

१—रामनामकीर्तनमत्त महावीर	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२—अतिथिसेवक कपोतके बलिदानसे व्याधका जीवन-परिवर्तन	(तिरंगा) ...	८८५

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

अतिथिसेवक कपोतके बलिदानसे व्याधका जीवन-परिवर्तन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

सर्वारिष्टहरं सुखैकरमणं शान्त्यास्पदं भक्तिदं स्मृत्या ब्रह्मपदप्रदं स्वरसदं प्रेमास्पदं शाश्वतम् ।
मेघश्यामशरीरमच्युतपदं पीताम्बरं सुन्दरं श्रीकृष्णं सततं व्रजामि शरणं कायेन वाचा धिया ॥

वर्ष ३८ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ २०२१, मई १९६४ { संख्या ५ पूर्ण संख्या ४५०

अतिथिसेवक कपोतका बलिदान

क्षुधाक्षुब्ध अति व्याधको विहग दुखित पहचान ।
अतिथि-सुखद उद्यत हुआ करने निज बलिदान ॥
शुष्क पर्ण एकत्रकर स्वयं जलाकर आग ।
कूद पड़ा पर-दुखदुखी शुचि कपोत बड़भाग ॥
देख कबूतरका विमल परहित शुचितम त्याग ।
व्याध-हृदय निर्मल हुआ, उठी धर्मरति जाग ॥
पुण्य-तपस्या हेतु ले व्रत कठोर अति व्याध ।
चला महा-प्रस्थानपथ निश्चित मन निर्बाध ॥

याद रक्खो—वाणी भगवती सरस्वतीका स्वरूप है। वाणी वह महान् शक्ति है, जिसका सदुपयोग करके मनुष्य सबको अपने वशमें कर सकता है और दुरुपयोग करके सबको अपना वैरी बना सकता है। वाणीका सदुपयोग है—जिससे किसीको उद्वेग न हो, जो सत्य हों, जो प्रिय हों और जो हितकारक हों—ऐसे वचन बोलना एवं शेष समय वाणीके द्वारा सद्ग्रन्थोंका पाठ तथा भगवान्के मङ्गलमय नाम-लीला-गुणोंका गान, कीर्तन और जप आदि करना।

याद रक्खो—वाणीका सदुपयोग ऐसी वाणी बोलनेमें है जिसे सुनते ही सुननेवालोंके मनमें हर्ष और उल्लासका उदय हो; वे प्रीति तथा उत्सुकताके साथ उसे सुनना चाहें; जो आदर, सम्मान तथा विनय-नम्रतासे सम्पन्न हो; जो मधुर एवं हितकारक हो; जो सत्साहस और निर्भयता प्रदान करनेवाली और बढ़ानेवाली हो; जो सदाचार, धर्म, शास्त्र, संत-भक्त, त्यागी पुरुष, सती स्त्री आदिके प्रति श्रद्धा-सत्कार बढ़ानेवाली हो; जो भगवान्के भजन-सेवनके लिये उत्साह देनेवाली हो; जिससे उदारता, त्याग और प्रेमका विस्तार होता हो और जो प्रसन्नहृदय एवं मुस्कराते मुखसे उच्चरित हो।

याद रक्खो—वाणीका सदुपयोग होनेपर उसकी शुद्धि और शक्ति बढ़ जाती है। कभी मिथ्या न बोलकर सदा सत्य बोलनेवालेकी वाणीसे जो कुछ निकल जाता है, वह सत्य होने लगता है। मधुर तथा हितकारक वाणी प्राणीमात्रमें सर्वत्र प्रेम तथा आनन्दका विस्तार करके बड़ी मात्रामें प्रेम तथा आनन्द प्राप्त कराती है। विनय, नम्रता तथा आदर-सम्मानयुक्त हितभरी वाणी बदलेमें बहुत बड़े रूपमें आदर, सेवा, सम्मान तथा कल्याण प्राप्त करानेवाली होती है और भगवान्के मङ्गलमय नाम-लीला-गुण आदिका कीर्तन-जप करनेवाली वाणी जगत्में दिव्यता, पवित्रता और आध्यात्मिकताका प्रसार कर त्रितापसे मुक्त करानेमें सहायता करती है एवं अनायास ही भगवान्की कृपाके दर्शन करवाकर जीवनको सफल और धन्य बना देती है।

याद रक्खो—मिथ्याभाषण, परदोष-कथन, पर-निन्दा, चुगली, कठोर बोलना, रूखा बोलना, शाप देना, गाली बकना, किसीका उपहास करना, व्यङ्ग कसना, ताने मारना, अङ्गहीन-कुरूपको अङ्गहीन-कुरूप कहना, जिसमें किसीका अपमान-तिरस्कार तथा अहित होता हो—ऐसे वचन बोलना, मिथ्या आश्वासन देना; भगवान्, धर्म-शास्त्र, संत-भक्त आदिकी निन्दा करना, साहस तोड़ने, कायरताको बढ़ाने तथा भय एवं निराशा उपजानेवाले वचन कहना, झूठी गवाही देना, सन्मार्गसे हटाकर कुमार्गपर ले जानेवाले वाक्य कहना, अपने लिये अभिमान-ऐंठ, बड़प्पनकी बातें कहना, झूठी प्रतिज्ञा करना एवं कलह-द्वेष बढ़ानेवाले वाक्य कहना, परचर्चा करना, व्यर्थकी बातें करना, अधिक बोलना—यह वाणीका अपव्यवहार, दुरुपयोग है तथा सर्वथा अवाञ्छनीय है। ये वाणीसे होनेवाले नीच कर्म या पाप हैं। इनसे बचना चाहिये।

याद रक्खो—जो लोग वाणीके द्वारा तीर-से चुभनेवाले कर्कश तथा रूखे वचन बोलते हैं, दूसरोंके प्रति व्यंग कसते और उनकी दिल्लगी उड़ाते हैं। ऐब बताकर चिढ़ाते हैं, अपमानजनक तथा अहितकारक वाणी बोलते हैं। गाली या शाप देते हैं और दूसरोंके हितका नाश करनेवाले वचन बोलते हैं—वे सहज ही द्वेष-द्रोह, क्लेश-कलह, कष्ट-संताप, क्रोध-हिंसा आदिको जन्म देकर अपने तथा दूसरोंके लिये अशान्ति, अप्रसन्नता, भय-शंका, दुःख, दुर्भाग्य और शोक-विषादको बुलाते हैं और इस कारण स्वयं रात-दिन जलते तथा दूसरोंको जलाते रहते हैं। उनकी बुद्धि मारी जाती है, जिससे नये-नये पाप बनते हैं और फलतः सर्वनाश हो जाता है। यह वाणीके दुरुपयोगका परिणाम है!

'शिव'

श्रद्धा और निष्कामभावका रहस्य

(लेखक—श्रद्धेयश्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यको जिस कार्यके लिये यह शरीर मिला है, उस कार्यमें ही इसको लगाना चाहिये। वह कार्य है—आत्माका उद्धार। आत्माके उद्धारमें प्रधान हेतु है—ईश्वर, महापुरुष, शास्त्र और परलोकपर परम श्रद्धा करना। आत्मोद्धारके लिये भक्ति, ज्ञान, योग, वैराग्य, सदाचार आदि जितने भी साधन बताये गये हैं, उनमेंसे किसीकी भी सिद्धि बिना श्रद्धाके नहीं होती। भगवान्‌ने भी गीतामें जगह-जगह श्रद्धापर जोर दिया है। जहाँ भक्तिकी विशेष प्रशंसा की है, वहाँ श्रद्धाको लेकर ही उसकी प्रशंसा की है। भगवान् कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६। ४७)

'सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।'

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(गीता १२। २)

'मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं।'

तथा बिना श्रद्धाके ज्ञानकी प्राप्ति भी नहीं होती। भगवान्‌ने कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् वह मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।'

गीताके सत्रहवें अध्यायमें तो श्रद्धाका ही प्रधानतासे वर्णन है। उस अध्यायका नाम ही है—श्रद्धात्रय-विभागयोग। श्रद्धाके तीन विभाग हैं—सात्त्विक, राजस, तामस। इस अध्यायमें इसीका विवेचन है। भगवान्‌ने यज्ञ, दान, तप आदिमें सात्त्विक श्रद्धाकी विशेष प्रशंसा की है और पुरुषको श्रद्धामय बताया है—जिसकी जैसी श्रद्धा (निष्ठा) होती है, उसका वही स्वरूप है। भगवान् कहते हैं—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(गीता १७। ३)

'हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है; इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।'

बिना श्रद्धाके तो कोई भी उत्तम कर्म हो, उसको मिथ्या माना गया है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(गीता १७। २८)

'हे अर्जुन! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दान, तप और जो कुछ भी शुभ कर्म है, वह सब 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है; इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।'

इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध हुआ कि भक्तियोग,

कर्मयोग, ज्ञानयोग—सबमें श्रद्धाकी प्रधानता है। श्रद्धाके बिना इनमेंसे किसीकी भी सिद्धि सम्भव नहीं।

ऊपर बताया गया है कि ईश्वर, महापुरुष, शास्त्र और परलोक——इन चारोंपर ही श्रद्धा-विश्वास करना परम लाभदायक है। अतः इन सभीपर श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये। वैसे, ये एक-एक ही परम कल्याण करनेवाले हैं। इनमेंसे किसी एकपर भी श्रद्धा होनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। जिसकी इनमेंसे किसीपर भी श्रद्धा नहीं, वह नास्तिक है। उसे कहीं भी सुख-शान्ति नहीं। भगवान्‌ने बताया है——

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(गीता २। ६६)

'जिसके मन और इन्द्रिय जीते हुए नहीं हैं, उस पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें श्रद्धा भी नहीं होती तथा श्रद्धाहीन मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है?'

इसलिये ईश्वर, महापुरुष, शास्त्र और परलोकपर श्रद्धा-विश्वास करना परम आवश्यक है। ईश्वरकी सत्तामें, उनके अवतारोंमें, वचनोंमें, उनके शक्ति-सामर्थ्यमें, उनके गुण, प्रभाव, लीला और ऐश्वर्य आदिमें तथा शास्त्र और महात्मा पुरुषोंके वचनोंमें एवं परलोकमें प्रत्यक्षकी भाँति विश्वास एवं परम पूज्यता और उत्तमताकी भावना होना 'श्रद्धा' कहा जाता है। और यही विश्वास जब प्रत्यक्षसे भी बढ़कर होता है, तब उसे 'परम श्रद्धा' कहते हैं। जैसे, प्रत्यक्षमें तो एक मकान ईंट, चूना और सीमेंटका बना हुआ दीखता है; पर यदि कोई श्रद्धेय महापुरुष उसे सुवर्णका बताते हैं तो परम श्रद्धालु मनुष्यको वह मकान सुवर्णका ही दीखने लग जाता है——यह परम श्रद्धा है।

श्रद्धा होनेपर मनुष्य श्रद्धेयकी आज्ञाकी कभी अवहेलना नहीं कर सकता, बल्कि वह सदा श्रद्धेयकी आज्ञाके अनुकूल ही चलता रहता है। किंतु उससे भी अधिक श्रद्धालु वह है, जो श्रद्धेयके संकेतके अनुसार कार्य करता रहता है; और वह तो परम श्रद्धालु है जो सदा उनके सिद्धान्त और मनके अनुकूल ही आचरण करता रहता है। जिस प्रकार एक पतिसेवापरायणा पतिव्रताको पतिभक्तिके बलसे अपने पतिके मनके भावका पहलेसे ही पता लग जाता है, वैसे ही जिस साधककी श्रद्धेयमें परम श्रद्धा होती है, उसे श्रद्धाके बलसे उनके मनके भावका पता लग जाता है; इसलिये वह श्रद्धेयके अनुकूल ही कठपुतलीकी भाँति कार्य करता रहता है। इस प्रकार जो श्रद्धेयके आदेश, संकेत, सिद्धान्त और मनके अनुकूल अतिशय श्रद्धा, हर्ष, उत्साह और प्रसन्नतापूर्वक चलता है, उसे शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

छान्दोग्य उपनिषद्‌के अध्याय ४, खण्ड ४से ९में कथा मिलती है कि जबालाके पुत्र सत्यकाम ब्रह्मज्ञानकी इच्छासे महर्षि हारिद्रुमत गौतमके पास गये। वहाँ जानेपर गुरुजीने चार सौ अत्यन्त कृश गौएँ अलग करके उनको आदेश दिया——'सौम्य! तू इन गौओंके पीछे-पीछे जा।' गुरुजीके आदेशानुसार वे अत्यन्त उत्साह और हर्षके साथ उनको लेकर वनकी ओर गये। उस समय उन्होंने गुरुजीसे निवेदन किया——'इनकी संख्या एक हजार पूरी होनेपर मैं लौटूँगा।' ऐसा कह वे घास और जलकी अधिकतासे युक्त निरापद वनमें गौओंको ले गये और जब उनकी संख्या पूरी एक हजार हो गयी, तब लौटे। लौटते समय मार्गमें ही उनको गुरुकृपासे बैल, अग्नि, हंस और मद्गु (जलचर पक्षी) के उपदेशद्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया।

इसी प्रकार, महाभारत—आदिपर्वके तीसरे अध्यायमें

गुरुभक्त आरुणिकी कथा आती है। एक दिन श्री-आयोदधौम्य ऋषिने अपने शिष्य पाञ्चालदेशवासी आरुणिको खेतपर भेजा और कहा—'वत्स ! जाओ, क्यारियोंकी टूटी हुई मेड़ बाँध दो।' उनका आदेश पाते ही आरुणि वहाँ जाकर धानकी क्यारीकी मेड़ बाँधने लगा; किंतु बहुत प्रयत्न करनेपर भी बाँध न सका। अन्तमें उसे एक उपाय सूझा। वह तुरंत उस क्यारीकी टूटी हुई मेड़की जगह स्वयं ही लेट गया। इससे बहता हुआ जल रुक गया। कुछ समय पश्चात् गुरुजीने पूछा—'आरुणि कहाँ चला गया ?' शिष्योंने कहा—'आपने ही तो उसको खेतमें क्यारियोंकी मेड़ बाँधने भेजा था।' बहुत विलम्ब हुआ जानकर गुरुजी स्वयं शिष्योंके साथ खेतमें गये और आवाज दी—'वत्स आरुणि ! कहाँ हो ! यहाँ आओ।' गुरुजीके वचन सुनते ही आरुणि उनके समीप आ खड़ा हुआ और विनयपूर्वक बोला—'भगवन् ! मैं यह हूँ। आपके आदेशके अनुसार मेड़का जल रोकनेके लिये स्वयं ही वहाँ लेट गया था। अब आपके पास उपस्थित हूँ और आपके चरणोंमें अभिवादन करता हूँ। आज्ञा दीजिये, अब कौन-सा कार्य करूँ।' गुरुजीने उत्तरमें कहा—"तुम क्यारीकी मेड़का उद्दलन करके उठे हो, अतः तुम 'उद्दालक' नामसे प्रसिद्ध होगे और तुमने मेरी आज्ञाका पालन किया है, इसलिये तुम्हें कल्याणकी प्राप्ति होगी तथा सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्र तुम्हारी बुद्धिमें स्वतः ही प्रकाशित हो जायँगे।' गुरुजीका आशीर्वाद पाकर आरुणि कृतकृत्य हो अपने देशको चला गया।

इस प्रकार श्रद्धेयके प्रति परम श्रद्धा होनेपर साधकको अतिशीघ्र परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

विचार करना चाहिये, हमलोग एक डाक्टरपर विश्वास करके अपना शरीर उसे सौंप देते हैं। वह कीमत लेकर दवा देता है, फीस भी लेता है और आवश्यक समझता है तो चीर-फाड़ (ऑपरेशन) भी करता है तथा कोई बड़ा ऑपरेशन होता है तो पहलेसे यह लिखवा लेता है कि इसमें प्राणोंकी जोखिम है, मैं इसका जिम्मेवार नहीं। ऐसी हालतमें यदि रोगी मर गया तो गया।

इसी तरह, जब किसीके कोई मुकदमा-मामला लग जाता है तो वह किसी वकील, बैरिस्टर, मुख्तारपर अपना सम्पूर्ण भार दे देता है। उनके नाम मुख्तारनामा लिखकर दे देता है। प्रायः वे पहले रुपये लेकर ही उसके कार्यमें खड़े होते हैं और यदि मामला खराब हो गया तो उन्हें क्या परवाह ! यदि मामला बिगड़कर उस व्यक्तिकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय तो उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं।

विचार करें—लोग ऐसे स्वार्थपरायण मनुष्योंका विश्वास करके डाक्टरोंको अपना जीवन और वकीलोंको अपनी सम्पत्तिका पूरा अधिकार सौंप देते हैं तो जिनका दूसरोंके हितके लिये ही अवतार और जन्म है, वे परम निःस्वार्थी ईश्वर और महात्मा क्या इतने भी विश्वासके पात्र नहीं हैं ! तथा शास्त्रोंमें तो अच्छी शिक्षाके सिवा दूसरी बात ही नहीं है और परलोकको तो कोई न भी माने तो भी वह कायम ही है। मनुष्य जो कुछ अच्छा-बुरा कर्म करता है, उसका फल उसे अवश्य मिलेगा—यह युक्तिसंगत, न्यायसंगत और यथार्थ है। सारी दुनियाके लोग सिद्धान्तरूपसे यह कहते भी हैं कि अच्छेका फल अच्छा और बुरेका फल बुरा होकर ही रहता है।

फिर भी आप कहते हैं कि परलोक नहीं है और मैं कहता हूँ कि परलोक है। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये, परलोक नहीं है और आपकी बात ही ठीक है। जब परलोक नहीं है तो वह आपके लिये भी नहीं है और मेरे लिये भी नहीं है। इसमें आपके और मेरे दोनोंके लिये समान ही बात है। आपकी

बात सत्य होनेपर भी आपके तो क्या विशेष लाभ है और मेरी बात मिथ्या होनेपर भी मुझे क्या हानि है ? यदि आप कहें कि परलोक मानकर आप जो यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत, सेवा, पूजा, भक्ति, परोपकार आदि कार्योंमें अपना समय, श्रम और धन व्यय करेंगे, वह व्यर्थ जायगा, तो इसका उत्तर यह है कि यदि आप इन अच्छे कार्योंमें धनादि व्यय नहीं कर रहे हैं और नाना प्रकारसे परिश्रम करके धन एकत्र कर रहे हैं तो विचार कीजिये, मरनेके बाद आपको सब कुछ यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा । आपके मरनेके बाद बचे हुए धनकी क्या दशा होगी—यह तो भविष्यके ही गर्भमें है । निश्चय है कि स्वयं समझ-बूझकर परोपकारमें खर्च करनेकी अपेक्षा तो उसकी बुरी दशा ही होगी । सरकार, भाई-बन्धु आदि किसीके भी हाथमें वह जायगा तो उसका उपयोग आपकी इच्छाके अनुकूल कहाँतक होगा—यह विचारणीय ही है और यदि मेरा धन परोपकारके कार्यमें व्यय होगा तो किसीके तो काम आयेगा ही । मुझे मनुष्यताके नाते यह समझना ही चाहिये कि उनको जो लाभ है, वह मुझको ही है। मेरी सम्पत्ति और मेरा शरीर यदि दूसरेके काममें आ गया तो मेरा जीवन सफल हो गया । इसलिये परलोकको मानकर यज्ञ-दानादिमें समय, श्रम और धन लगानेसे मुझे कोई हानि नहीं है, बल्कि लाभ-ही-लाभ है ।

किंतु मान लीजिये, यदि मेरी बात ही सत्य हो, परलोक निश्चित हो तो यदि मैं सकामभावसे यज्ञ, दान, तप, परोपकार आदि करूँगा तो उसका फल मुझे इस लोक और परलोकमें मिलेगा । और यदि मैं निष्कामभावसे सब कुछ भगवान्‌का ही समझकर, भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार, भगवान्‌के लिये ही करूँगा तो मुझे प्रत्यक्ष परम शान्ति और अन्तमें परम कल्याण प्राप्त होगा, जिससे मेरा मनुष्यजन्म सफल हो जायगा ।

किंतु जब आपको परलोकपर विश्वास ही नहीं, तब निष्कामभावसे करना तो दूर रहा, सकामभावसे भी इन सबको आप क्यों करेंगे ? अतः आप कर्तव्यसे च्युत होकर दोनों प्रकारके लाभसे ही वञ्चित रहेंगे । इतना ही नहीं, यदि आप शास्त्रविरुद्ध पापकर्म करेंगे तो आपको घोर नरकोंकी प्राप्ति होकर, सदाके लिये महान् दुःखकी प्राप्ति होगी ।

अतः आपकी बात सत्य होनेपर भी मेरी कोई हानि नहीं है और मेरी बात सत्य होनेपर मेरे तो लाभकी सीमा नहीं और आपके हानिकी सीमा नहीं तथा आप लाभसे वञ्चित रहकर उल्टे खतरेमें पड़ेंगे । इसलिये संदेहयुक्त विषय होनेपर भी परलोकको न माननेकी अपेक्षा उसे माननेमें ही सब प्रकारसे लाभ-ही-लाभ है । इसी प्रकार ईश्वर, महापुरुष और शास्त्रपर श्रद्धा करनेके विषयमें समझ लेना चाहिये ।

हमलोग जो श्रद्धा-विश्वास करनेके योग्य नहीं, उन स्वार्थपरायण डाक्टर, वकील, बैरिस्टर आदिपर तो श्रद्धा-विश्वास करते हैं और जो श्रद्धा-विश्वास करनेयोग्य हैं, उन ईश्वर, महापुरुष, शास्त्र और परलोकपर श्रद्धा-विश्वास नहीं करते—यह हमारी कितनी भारी मूर्खता है ! इसपर विचार करना चाहिये और विचार करके उससे लाभ उठाना चाहिये ।

संसारमें प्रायः सभी मनुष्य अर्थके दास हो रहे हैं। लोगोंमें स्वार्थपरायणता बहुत अधिक मात्रामें बढ़ रही है। स्वार्थकी मात्रा बढ़ जानेके कारण ही लोग अध्यात्म-विषयसे वञ्चित-से ही हो रहे हैं । किंतु विचार करना चाहिये कि अर्थसे तो मनुष्यको केवल सांसारिक सुख ही मिल सकता है और वह सांसारिक सुख वास्तवमें सुख ही नहीं है, दुःख ही सुखके रूपमें प्रतीत हो रहा है । थोड़ी देरके लिये यदि उसे सुख भी मान लिया जाय तो परमानन्दमय परमात्माकी तुलनामें वह प्रतीत होनेवाला सारे ब्रह्माण्डका सुख मिलकर भी

समुद्रकी तुलनामें एक बूँदके समान भी नहीं है। किंतु बूँदमात्र सुखकी तुलना भी तब की जाय जब वह वास्तवमें सुख हो। वह तो सुखकी प्रतीतिमात्र ही है, वास्तवमें सुख है ही नहीं।

फिर अर्थसे मिलनेवाला सुख राजस या तामस होता है। सात्त्विक सुख तो भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, सदाचार आदिसे प्राप्त होता है, अर्थसे नहीं। इसलिये हमलोगोंको अर्थमें ही रचे-पचे रहकर अपने जीवनको कलङ्कित क्यों बनाना चाहिये? मरनेके बाद तो हमारा इस अर्थसे सम्बन्ध रहता ही नहीं। हाँ, अर्थसंग्रहमें जो नाना प्रकारके पाप किये जाते हैं, उनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। आजकल सरकारी कानूनके अनुसार जो अनेक प्रकारके कर (टैक्स) लागू हो गये हैं, उनसे धनको बचानेके लिये सरकार, भाई-बन्धु और संसारके अन्य मनुष्योंके साथ लोग नाना प्रकारकी झूठ, कपट, बेईमानी, दगाबाजी, धोखेबाजी करते हैं; किंतु इस प्रकार अन्यायोपार्जित द्रव्यसे वर्तमानकालमें सात्त्विक सुख भी नहीं मिल सकता, फिर सम्पूर्ण गुणोंसे सर्वथा अतीत सच्चिदानन्द परमात्मा-का प्राप्त होना तो बहुत दूर रहा। उल्टे मरनेपर किये हुए पापोंके फलस्वरूप भयानक दुःखोंका उपभोग करना पड़ता है। इसलिये यदि अपना कल्याण चाहें तो अर्थको महान् अनर्थ मानकर हृदयसे इस लोभका त्याग कर देना चाहिये।

क्योंकि मरनेके बादकी बात तो दूर रही, जीते हुए भी आप अपनी इच्छाके अनुसार इसका उपयोग नहीं कर सकते। धनको अच्छे कार्यमें लगानेकी आपकी इच्छा होनेपर भी आप नहीं लगा सकते। इसमें एक तो आपकी आसक्ति बाधक होती है, दूसरे भाई-बन्धु बाधक हो जाते हैं एवं इसकी रक्षाके लिये भी बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। चोर, डाकू, याचक और सरकार—सबसे छिपाकर रखना पड़ता है। यदि कहीं धनका विनाश हो गया तो दुःख होता है, वियोग हो गया तो दुःख होता है, खर्च करनेमें भी दुःख होता है तथा उसे छोड़कर जानेके समय जो दुःख होता है, उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है।* इसलिये न्यायपूर्वक भी धनसंचय करनेमें कोई लाभ नहीं है; फिर अन्यायपूर्वक धनसंचय करनेका तो प्रश्न ही क्या है।

एवं निष्काम भावका तो बड़ा भारी महत्त्व है। उसका तत्त्व भलीभाँति समझकर उससे लाभ उठाना चाहिये। एक मनुष्य अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये आपके साथ बर्ताव करता है और दूसरा मनुष्य अपना स्वार्थ त्यागकर आपके भलेके लिये ही चेष्टा करता है। आपको प्रत्यक्ष ही उस स्वार्थी मनुष्यका व्यवहार विषतुल्य और निःस्वार्थी मनुष्यका व्यवहार अमृततुल्य लगता है। इसी कारण स्वार्थीकी अपेक्षा निःस्वार्थी मनुष्य

---

* श्रीमद्भागवतमें बतलाया गया है—

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥
(११।२३।१७—१९)

'धन कमानेमें, कमा लेनेपर उसको बढ़ाने, रखने और खर्च करनेमें तथा उसके नाश और उपभोगमें मनुष्योंको परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रमका ही सामना करना पड़ता है। चोरी, हिंसा, असत्य, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद (अहंकार), भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये पंद्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनके कारण ही माने गये हैं। इसलिये कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि स्वार्थ और परमार्थके विरोधी इस अर्थनामधारी अनर्थको दूरसे ही छोड़ दे।'

आपको बहुत अच्छा लगता है और यह उचित ही है; क्योंकि यह सभीका प्रत्यक्ष अनुभव है कि निःस्वार्थ भावसे व्यवहार करनेवाला सबको प्रिय होता है। अतः हमलोगोंको इस अनुभवसे लाभ उठाकर सबके साथ निःस्वार्थभावसे ही व्यवहार करना चाहिये।

इतना ही नहीं, निःस्वार्थ व्यवहार करनेवालेका कल्याण होता है, उसका जन्म सफल हो जाता है, इस लोकमें भी उसे प्रत्यक्ष परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति होती है।

किंतु जो मनुष्य मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके उद्देश्यसे ही सबके हित (उपकार) के लिये अपना तन, मन, धन, जीवन लगाता है तो न लगानेकी अपेक्षा तो यह मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये लगाना भी उत्तम है। पर निष्काम भावमें यह कलङ्क है। अतः मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये न लगाकर अपना परम कर्तव्य समझते हुए परहितमें इन सबको लगाना अमृत है, इसलिये वह जीवनको उज्ज्वल बनानेवाला है। स्वार्थके त्यागसे जो वास्तविक शान्ति मिलती है, वह किसीसे भी नहीं मिलती। लोग स्वार्थत्यागका तत्त्व नहीं जानते—'निष्काम' शब्द सुनते हैं, गीतादि शास्त्रोंमें भी पढ़ते हैं, पर उसका रहस्य न जाननेके कारण उसके लाभसे वञ्चित रहते हैं।

जो लोग परोपकारके लिये अपना तन, मन, धन देते हैं, वास्तविक तत्त्व न समझनेके कारण उनका वह देना भी लेनेके समान ही होता है। जैसे, हमने अहंकारपूर्वक अपना तन, मन, धन किसीको दिया और यह कहा कि हम तो अपने आत्माके कल्याणके लिये निष्काम भावसे उसकी सेवा करते हैं। हमारे ये शब्द सुनकर जिसका हमने उपकार किया, उस उपकृत मनुष्यके मनमें संकोच होता है, दुःख होता है। फिर भी वह हमारा भला चाहता है। हमने तो अपने कल्याणके लिये उसको तन, मन, धन आदि दिया था और उसने हमको कल्याणका आशीर्वाद दिया। अतः वह हमारा आत्मकल्याणके उद्देश्यसे देना भी लेनेके समान ही है। यदि हम मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये दें तो वह तो निम्नश्रेणीका है ही। इसलिये हमको इस उद्देश्यसे देना चाहिये कि ये सब भगवान्‌की वस्तुएँ हैं, मैं भी भगवान्‌का हूँ, भगवान्‌की ही प्रेरणासे भगवान्‌के लिये ही दिया गया है, मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ। इस प्रकारका भाव बहुत उत्तम है। इसमें यदि मैं देनेका अभिमान करूँ कि मैं तो दाता, उपकारी हूँ और वह ग्रहीता, उपकृत है तो यह अभिमान करना मेरी मूर्खता है। हमलोगोंको उपर्युक्त उत्तम भाव रखकर ही सेवा करनी चाहिये।

यद्यपि हम दूसरोंसे सेवा या दूसरेके हककी कोई वस्तु आदि किंचित् मात्र भी किसी प्रकार भी लेना नहीं चाहते, किंतु हमारे द्वारा सेवा न करानेसे तथा उनकी दी हुई वस्तु स्वीकार न करनेसे हमारे नौकर, स्त्री, पुत्र, मित्र, बन्धु-बान्धव आदिको दुःख होता है और ले लेनेसे उनको संतोष होता है तो हमारा वह लेना देनेके समान ही है। कोई भी सगा-सम्बन्धी, भाई-बन्धु, या मित्र मिठाई-फल आदि देते हैं तो उसको यदि 'हम किसीका कुछ भी नहीं लेते और न किसीके द्वारा सेवा कराते हैं'—यों अहंकारपूर्वक मनमें ऐंठ रखकर हम नहीं लेते तो यह त्याग भी त्यागका फल नहीं दे सकता। किंतु उनके सुख और प्रसन्नताके लिये यदि उसे ग्रहण कर लें तो वह ग्रहण भी त्यागसे बढ़कर है। वह लेना भी देनेके समान है; क्योंकि उसने अपने कल्याणके लिये हमको समय या पदार्थ दिया और उसको उस छोटी-सी वस्तु देनेके फलस्वरूप महान् पदार्थ कल्याण मिला। अतः उस वस्तुका स्वीकार करना हमारे लिये दोष नहीं है। किंतु हमें यह अभिमान मनमें नहीं करना चाहिये कि हमारे

द्वारा सेवा स्वीकार करनेसे उनका कल्याण होता है और हमें कोई हानि नहीं है । इस प्रकारका अभिमान होना निष्काम भावमें कलङ्क है ।

एक महात्मा पुरुषकी हम अन्न, वस्त्र, पदार्थ और शरीरके द्वारा सेवा करते हैं, उसमें हमारा भी निष्काम भाव है और उनका भी निष्काम भाव है; तो उसमें दोनोंका ही कल्याण है । महापुरुष अनावश्यक वस्तुको तो स्वीकार करते ही नहीं, आवश्यक वस्तुको इसलिये स्वीकार करते हैं कि इसको दुःख न हो । इसलिये नहीं कि मैं महात्मा हूँ और मेरा सेवा कराना कर्तव्य है एवं इसका सेवा करना कर्तव्य है । यों अपनेमें अच्छेपनका अभिमान करना तो कलङ्क है । सेवा करनेवाला यदि इस भावसे सेवा करता है कि ये महात्मा हैं, इनकी सेवा करनेसे मेरा कल्याण होगा तो उसके लिये यह भाव अच्छा है; किंतु इससे भी उत्तम भाव यह है कि ये सब वस्तुएँ भगवान्‌की हैं, ये भगवत्स्वरूप हैं, भगवान्‌की दी हुई वस्तुएँ भगवान्‌की प्रेरणासे भगवान्‌के काममें लग रही हैं । भगवान्‌की मुझपर विशेष दया है, जो वे मुझे इसमें निमित्त बना रहे हैं । इस प्रकार अपने कल्याणकी इच्छा भी न रखना सर्वोत्तम है । महात्मा तो कल्याणस्वरूप हैं ही, यह उत्तम भाव-सम्पन्न साधक भी कल्याणस्वरूप ही है ।

बहुत-से लोग रोग या संकटकी निवृत्तिके लिये अथवा स्त्री, पुत्र, धन आदिकी प्राप्तिके लिये सकाम-भावसे विधि-विधान और श्रद्धापूर्वक यज्ञ, दान, तप, देवाराधन आदि अनुष्ठान करते हैं । सो न करनेकी अपेक्षा उनका सकामभावसे करना भी उत्तम है; किंतु इसकी कीमत कौड़ियों या घुँघचियोंके समान है । वही यज्ञ, दान, तप, देवाराधन आदि अनुष्ठान यदि विधिपूर्वक निष्कामभावसे परमात्माकी प्राप्तिके लिये करें तो वह उससे लाखों गुना श्रेष्ठ है; उसकी कीमत पारससे भी अत्यन्त बढ़कर है । इसीलिये तो श्रीरामचरितमानसमें कहा गया है—

> **ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई ।**
> **गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ॥**
> (उत्तर० ४३ । २)

जो मनुष्य निष्कामभावका तत्त्व—रहस्य जान जाता है वह देवता, मनुष्य, महात्मा या अन्य किसी भी प्राणीसे कभी कोई कामना नहीं करता । जाग्रत्‌की तो बात ही क्या, उसके हृदयमें स्वप्नमें भी कोई कामना-का भाव उदय नहीं होता ।

इस प्रकार श्रद्धा और निष्कामभावका तत्त्व-रहस्य भलीभाँति समझकर श्रद्धा करनेयोग्य ईश्वर, महापुरुष, शास्त्र और परलोकपर परम श्रद्धा करके उनके मनोऽनु-कूल चलना एवं निष्काम भावसे सबके हितमें तत्पर रहना मनुष्यका परम कर्तव्य है ।

प्रभुका स्वयं अपना दान

सारे यज्ञ-तपोंके भोक्ता, सब लोकोंके ईश महान् ।
सहज सुहृद जो प्राणिमात्रके नित्य अहैतुक कृपानिधान ॥
कैसा भी हो, कोई भी हो, पाप-आयु हो—पुण्यनिवास ।
शरणागतको आश्रय देकर नित्य बना लेते निज दास ॥
सेवाका फल एक चाहता जो सेवा-समृद्धि सब काल ।
करके दान स्वयं प्रभु अपना करते उसको नित्य निहाल ॥

उपनिषदोंकी भावधारा

(लेखक—श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय एम्० ए०)

ब्रह्म और आत्माके अभेदत्वका प्रतिपादन करनेवाली विद्याका नाम 'उपनिषद्' है । वेदके अन्तमें उपनिषद् आये हैं, इसलिये इनको 'वेदान्त' कहते हैं । 'वेद' का सरल अर्थ है—'जानना' । जो कुछ जानना है, उसका अन्त जहाँ है, उसको भी वेदान्त कहा जा सकता है; क्योंकि ज्ञानके सम्बन्धमें त्रिजगत्में जो कुछ है, वह समस्त उपनिषद्में है ।

वेदोंमें मन्त्र-द्रष्टा ऋषियोंकी ध्यान-मग्न अवस्थामें जो मन्त्र दहर-आकाशमें उदय हुए हैं, वे लिखे गये हैं, कहीं पद्यमें, कहीं गद्यमें । इनके प्रधानतः दो भाग हैं—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।

अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण—इन दो भागोंको वेद नाम दिया जाता है । ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें मन्त्रोंका अर्थ, यज्ञोंका अनुष्ठान और उनका नियम दिया हुआ है । इन ग्रन्थोंमें वेदके और दो भागोंका समावेश है—

(१) आरण्यक और (२) उपनिषद् ।

आरण्यकके अन्तर्गत उपनिषदोंमें ज्ञानका पूर्ण रूप देखा जाता है । मन्त्र, ब्राह्मण और आरण्यकमें कर्म-काण्डकी विधि है । उपनिषद्समूह ज्ञान-काण्ड हैं । उपासना-काण्ड कर्म-काण्डके अन्तर्गत है । जैसे योग-शास्त्र गीतोपनिषद्के तीन भाग हैं—कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग; वैसे ही वेदके तीन विभाग हैं—कर्म-काण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड ।

चारों वेदोंकी अनेकानेक पृथक्-पृथक् शाखाएँ हैं और प्रत्येक शाखासे युक्त एक-एक उपनिषद् होना चाहिये; पर वर्तमानकालमें न तो सब शाखाएँ मिलती हैं और न उपनिषद् ही । मुक्तिकोपनिषद्के प्रथम अध्यायसे यह ज्ञात होता है कि किस वेदके कितने उपनिषद् मिलते हैं । साथ-ही-साथ 'शान्ति' मन्त्र भी मिलते हैं; क्योंकि तत्त्व-विद्याके ग्रन्थपाठके समय आदि और अन्तमें विघ्नोंको दूर करनेके लिये 'शान्ति-पाठ' करना आर्य-ऋषियोंका नियम था । भिन्न-भिन्न उपनिषदोंके विभिन्न शान्ति-पाठ-मन्त्र हैं ।

मुक्तिकोपनिषद्में भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उपनिषदोंके नाम, किस वेदसे कितने उपनिषद् हैं और शान्ति-पाठके मन्त्र बताये हैं, उनके कथनका सारांश इस प्रकार एकत्रित किया गया है—

ऋग्वेदगतां दशसंख्यकानामुपनिषदां
'वाङ् मे मनसीति' शान्तिः ।
शुक्लयजुर्वेदगतानामेकोनविंशतिसंख्यकानामुपनिषदां 'पूर्णमद' इति शान्तिः ।
कृष्णयजुर्वेदगतानां द्वात्रिंशत्संख्यकानामुपनिषदां
'सह नाववत्विति' शान्तिः ।
सामवेदगतानां षोडशसंख्यकानामुपनिषदां
'आप्यायन्त्विति' शान्तिः ।
अथर्ववेदगतानामेकत्रिंशत्संख्यकानामुपनिषदां
'भद्रं कर्णेभिरिति' शान्तिः ।

इन पंक्तियोंसे हमको १०८ उपनिषद् मिलते हैं । परंतु श्रीआद्यशंकराचार्यने अपने ग्रन्थोंमें केवल दस उपनिषदोंका ही भाष्य लिखा है । कारण यह मालूम होता है कि श्रीरामचन्द्रजीने जब १०८ उपनिषदोंके नाम एक साथ बताये, तब सबसे पहले इन दस उपनिषदोंके ही नामोंका उल्लेख किया—इन्हींको प्राधान्य दिया—

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरः ।
ऐतरेयश्च छान्दोग्यो बृहदारण्यकं तथा ॥

इस लेखमें इन्हीं दस उपनिषदोंपर विचार किया गया है ।

ऋग्वेदीय उपनिषदोंमें 'ऐतरेयोपनिषद्' है । ऐतरेय आरण्यकके पाँच भाग हैं, उनमें द्वितीय भागके ४-५-६ अध्यायोंको 'ऐतरेयोपनिषद्' कहते हैं ।

शुक्लयजुर्वेदीय उपनिषदोंमें बृहदारण्यक है । इस

वेदके 'शतपथब्राह्मण' में १४ काण्ड हैं। १४वें काण्डको आरण्यक कहते हैं। इसके अन्तिम ६ अध्यायोंको 'बृहदारण्यकोपनिषद्' कहते हैं।

कृष्णयजुर्वेदके तैत्तिरीय आरण्यकमें १० प्रपाठक हैं। उनमें ७-८-९ प्रपाठकोंको 'तैत्तिरीयोपनिषद्' कहते हैं।

ऐसे ही दूसरे उपनिषद् भी आरण्यकके अंश हैं। परंतु ईशोपनिषद् एक अपवाद है। यह शुक्लयजुर्वेदके मन्त्र-संहिताका एक छोटा भाग केवल ४०वाँ अध्याय है। इसका प्रथम मन्त्र 'ईशावास्यम्' इस पदसे आरम्भ होता है, इसलिये इसका नाम—'ईशोपनिषद्' है।

जो ब्रह्मतत्त्व समस्त उपनिषदोंका प्रतिपाद्य विषय है, जो वैदान्तिक भावोंका मूल सिद्धान्त है, वह इस प्रथम मन्त्रसे ही आरम्भ होता है—

'ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।'

अर्थात्—'ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड-चेतन रूप जगत् है, यह सब ईश्वरसे व्याप्त है।' यहाँ परमात्मा सर्वव्यापक है, ऐसा कहा गया है। आगे सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वाधिपति और स्वयं सब कुछ हैं—यह बताया जायगा। फिर विद्या और अविद्याका तत्त्व, ज्ञान और कर्मका तत्त्व अर्थात् परमात्माकी प्राप्तिके साधन समझाये जायँगे। ऐसे ही सम्भूति (परब्रह्म) और असम्भूति (अन्य देवता) का तत्त्व भी इसमें बताया गया है।

मुण्डकोपनिषद्के प्रारम्भमें शौनक ऋषिने महर्षि आङ्गिरससे जो प्रश्न किया—

'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।'

'भगवन्! जिसको जान लेनेपर सब कुछ जान लिया जाय, वह परम तत्त्व क्या है?'—

और महर्षि आङ्गिरसने उत्तर दिया—

'द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च'

'ब्रह्मविद् इस प्रकार निश्चय ही कहते आये हैं कि दो विद्याएँ ही जानने योग्य हैं—एक परा और दूसरी अपरा'—सब उपनिषद् इसी प्रश्नोत्तरके विस्तृत विश्लेषणकी भावधारा हैं। कोई जीवात्मा परमात्माके दृष्टिकोणसे तथा कोई सब जीवोंकी एकताके दृष्टिकोणसे परा और अपरा विद्याकी व्याख्या करते हैं।

'केनोपनिषद्' में सर्वशक्तिमान् चेतनके सम्बन्धमें आरम्भमें जो प्रश्न हैं, वे 'केन' शब्दसे पूछे गये हैं, इससे 'केनोपनिषद्' नाम है। मन, प्राण, इन्द्रियाँ और समस्त जगत्का एक पुरुषोत्तम प्रेरक है, जो जड-चेतन दोनोंसे भिन्न है। जिसके लिये गीतोपनिषद्में भगवान् कह रहे हैं—'मैं क्षरसे परे हूँ और अक्षरसे भी उत्तम हूँ।' केनोपनिषद्में अतिशय सुन्दरी हैमवती उमा और देवराज इन्द्रका उपाख्यान है, जिसका तात्पर्य यह बताना है कि 'परब्रह्म परमेश्वरकी शक्तिसे सब कुछ संचालित है।'

'कठोपनिषद्' अपने भावका एक अनुपम ग्रन्थ है। इसमें एक ओर बालक नचिकेता है और दूसरी ओर यमराज हैं। वह निर्भीक बालक तीन दिनोंतक यमराजके द्वारपर पड़ा रहा; तब यमराजने उसको तीन वर देने चाहे। इनमें वे एक गहन ब्रह्म-ज्ञानको छोड़कर और सब कुछ देनेको तैयार थे—प्रचुर धन, जन, परिवार, कीर्ति, दीर्घायु इत्यादि। परंतु वह छोटा बालक इस प्रलोभनमें नहीं पड़ा; वह ब्रह्मज्ञान छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहता था; और वह अपने हठपर अड़ा रहा। अन्तमें मृत्युराजने प्रसन्न होकर उसको उस उपनिषद्की विद्याका वरदान दिया जो जीवन-मृत्युके पार उतारनेवाली है।

'प्रश्नोपनिषद्' में सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणी, आश्वलायन, भार्गव और कबन्धी—छः ऋषियोंके छः प्रश्नोंके उत्तर महर्षि पिप्पलाद देते हैं, इससे इसका नाम 'प्रश्नोपनिषद्' पड़ा। कहनेको तो छः प्रश्न हैं,

पर यथार्थमें हैं सत्रह प्रश्न, जो जीवोंकी उत्पत्तिके कारणसे आरम्भ होते हैं और जीवात्मा-परमात्मा-तत्त्व, ओंकार-उपासना-तत्त्व और पुरुष-तत्त्वमें शेष होते हैं ।

'मुण्डकोपनिषद्' में परा और अपरा विद्याकी आलोचना है और परा विद्याकी प्रशस्तिमें आनन्दका प्रकाश है । इसे उपनिषदोंका 'मुण्ड' अर्थात् 'सिर', उपनिषदोंका 'शिरोमणि' समझा जाता है ।

'माण्डूक्योपनिषद्' एक छोटा ग्रन्थ है, जिसमें केवल बारह मन्त्र हैं । परंतु श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये ।

मुमुक्षुओंकी मुक्तिके लिये केवल एक माण्डूक्य ही यथेष्ट है । इससे जिनकी मुक्ति न हो, उनके लिये दस उपनिषद् हैं । इसमें प्रणवकी महिमा आद्योपान्त अङ्ग और उपनिषद्सहित संनिवेशित है । गीतोपनिषद्में श्रीकृष्ण कहते हैं—'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म'—उसी 'ओं' की यहाँ पूर्णरूपेण विवेचना है, जिसमें ॐकारका मात्रासहित और मात्रातीत स्वरूप समझाया गया है ।

तैत्तिरीयोपनिषद्में पञ्चकोश—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय—का वर्णन है और आनन्द-स्वरूप जीवात्मा सब कोशोंको व्याप्त करके स्थित है—यह बताया गया है । भूः, भुवः, स्वः, महः व्याहृतियोंकी उपासनाके रहस्यका वर्णन है । पिता-पुत्र वरुण और भृगुका संवाद है । भृगुको ब्रह्मज्ञान-प्राप्तिकी शिक्षा शनैः-शनैः वरुण कैसे दे रहे हैं, यह शिक्षाकी वस्तु है ।

'ऐतरेयोपनिषद्'में सर्वस्रष्टा परमात्माकी अखिल विश्व-रचनाका विवरण है । ब्रह्मासे आरम्भ होकर मनुष्य और उसके अन्न, उसकी इन्द्रियोंके देवता (अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र इत्यादि) उसके जन्म-जन्मान्तरका रहस्य तक आ गया है । वैज्ञानिक लोगोंकी राय है कि इस उपनिषद्में वर्तमान जीव-विज्ञान (Biology) के सिद्धान्त देखे जा सकते हैं । ऋषि वामदेवके संवादमें मुक्तिके लिये ज्ञानका प्रभाव और औपनिषदक मुख्य विषय परमात्मा-जीवात्माका एकीभाव दिखाया गया है ।

छान्दोग्योपनिषद्से हम भलीभाँति देख सकते हैं कि हमारे ऋषिगण सत्यके अनुसंधानके लिये किस वैज्ञानिक दृष्टिसे ज्ञानका अन्वेषण करते थे—छान्दोग्यके ऋषि कहते हैं—

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति । (८ । १ । १)

अर्थात्—यह मानव-शरीर ब्रह्मपुर है । इसके भीतर एक क्षुद्र कमल-कुसुमाकार गृह है । उसके भीतर एक छोटा-सा आकाश है । उसके अंदर एक निगूढ़ रहस्य है, उसीको जानना होगा, उसीका अन्वेषण करना है । यह खोज, यह अन्वेषण, यह अनुसंधान उपनिषद्की भावधारामें सर्वत्र प्रवाहमान है । इस प्रणालीसे आर्य-ऋषियोंने जीवात्माका, परमात्माका और सत्यका पता लगाया ।

इस उपनिषद्में पहले ॐकारकी व्याख्या है । फिर पूरे ग्रन्थमें उपासनाका तत्त्व नाना उदाहरणोंसे विस्तारपूर्वक दिया हुआ है । पञ्च-प्राण, आत्मा, मन, आदित्य, वाक् इत्यादिका 'ब्रह्म' रूपमें वर्णन है । श्वेतकेतु-आरुणि और नारद-सनत्कुमारके प्रसिद्ध संवाद इसीमें हैं । इन्द्र और विरोचन प्रजापतिसे क्या सीखते हैं—यह प्रणिधान-योग है । 'बृहदारण्यकोपनिषद्' आकारमें और विषय-वस्तुमें सब उपनिषदोंसे 'बृहत्' है । इसको 'Encyclopaedia' कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी । इसमें रोचक उपाख्यान हैं—जैसे 'द-द-द' का उपदेश, जिसमें देवताओंने दम, दानवोंने दया और मनुष्योंने दानका अर्थ देखा । इसमें उपासना-तत्त्व है, जैसा कि छान्दोग्यमें पाया जाता है । इसमें सृष्टिकी उत्पत्ति और इसके मन, वाणी प्राणरूपमें विभागका वर्णन है । बालाकि

और काशिराज अजातशत्रुका ब्रह्मस्वरूपके सम्बन्धमें संवाद है, ऋषियोंमें महान् याज्ञवल्क्यका विशेष परिचय है। राजर्षि जनककी ज्ञान-गरिमाका परिचय है और विदुषी नारियाँ मैत्रेयी और गार्गीका मनोहर परिचय है। इसके सिवा और बहुत-सी बातें हैं। इस महान् ग्रन्थका ज्ञान-विज्ञान स्वाध्यायसे ही प्राप्त हो सकता है।

यहाँतकके अनुशीलनसे यह स्पष्ट है कि उपनिषदोंका मूल उद्देश्य है—ब्रह्मतत्त्व, ब्रह्म और आत्माका अभेदतत्त्व निर्धारित करना और इस उद्देश्यके साधनके लिये 'प्रणव' का स्वरूप ज्ञात करना; क्योंकि प्रणवमें सब तत्त्वोंका समावेश है। प्रणव ज्ञानका प्रतीक है। माण्डूक्योपनिषद्में कहा गया है—

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।

अर्थात्—ॐ इस प्रकारका यह अक्षर है। यह सम्पूर्ण जगत् उसीका उपव्याख्यान है, भूत, वर्तमान और भविष्यत्—यह सब जगत् ॐकार ही है; तथा जो त्रिकालसे अतीत भी जो कुछ है वह भी ॐकार है।

इस प्रकार प्रथम मन्त्रमें ही माण्डूक्योपनिषद्ने यथार्थ तत्त्वका भेद वर्णन किया है। एक आलोचक तो कहते हैं कि प्रथम मन्त्र क्यों, मन्त्रके प्रथम अक्षरमें ही सब रहस्य है—

कठोपनिषद्में इस तथ्यपर कहा गया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥
(१।२।१५)

अर्थात्—सम्पूर्ण वेद जिस पदका बारंबार प्रतिपादन करते हैं और सम्पूर्ण तप जिस पदका लक्ष्य कराते हैं; जिसको चाहनेवाले ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं; वह पद तुमको संक्षेपसे मैं बतलाता हूँ, यह 'ओम्' ऐसा है।

इस कारण मुण्डकोपनिषद्में सब साधनोंका, मनुष्य जीवनका लक्ष्य बताया गया है—

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि॥
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥
(२।२।३-४)

अर्थात्—उपनिषद्में वर्णित प्रणवरूप महान् अस्त्र धनुषको लेकर, उसपर निश्चय ही उपासनाद्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण चढ़ाये, तब भावपूर्ण चित्तके द्वारा उस बाणको खींचकर, हे प्रिय! उस अक्षरको ही लक्ष्य मानकर बेधे।

ओंकार ही धनुष है, आत्मा ही बाण है और परब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है; प्रमादरहित साधकद्वारा बींधा जाने योग्य है; उसे बेधकर बाणकी तरह उसमें तन्मय हो जाना चाहिये।

यह उपनिषद्के ऋषियोंका आवाहन है, यह उपनिषद्की विद्याद्वारा प्राप्य परम पद है। इसके उपरान्त मन और वाणी शान्त है। अतः शान्ति-मन्त्र-पाठसे ही उपसंहार उचित है—

ॐ शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्यमा॥
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥

नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मधुर

प्रियतम श्यामसुन्दरके द्वारा स्वसुख-वाञ्छाकी तो श्रीराधाके मनमें कल्पना भी नहीं है, वरं वे प्रायः इसी विचारमें चिन्तित रहती हैं कि 'मैं सर्वथा श्यामसुन्दरके लिये अयोग्य हूँ; मुझमें कहीं कोई भी गुण, शील, सौन्दर्य नहीं है। श्रीश्यामसुन्दर अपने सरल स्वभावसे ही मुझपर इतनी प्रीति करते हैं। उन्हें यदि उनके रूप-गुण-शील-सौन्दर्य-स्वभाव-भावके अनुरूप कोई सुन्दरी संगिनी प्राप्त होती तो वे वस्तुतः सुखका अनुभव करते।' कई बार तो उनको ऐसा लगता कि प्रियतम श्यामसुन्दर-को मोहका विकार हो गया है। इस मोह-विकारको दूर करनेके लिये वे चिकित्साकी बात सोचतीं, ग्रह-दोषकी कल्पना करतीं और किसी अनुष्ठानका विचार करतीं। ऐसे ही विचारोंमें डूबी हुई एक दिन वे अपनी एक अन्तरङ्ग सखीसे कहने लगीं—

सखी ! मैं भई अति असहाय !
त्रिभुवनमोहन स्याम हमारे
भये बावरे हाय !!
सहज चतुर चूड़ामनि-चिन्मय
सहज महामतिमान।
सकल ग्यान-आधार, ग्याननिधि
आप स्वयं भगवान॥
संभव भयौ असंभव, तिन कौं
निश्चै भयौ बिकार।
भूले, भले बुरे के सगरे
या तें सोच-बिचार॥
मो में सदा रूप-गुन-
सुंदरताको सहज अभाव।
तो भी बढ़त रहत नित मो तन
तिनमें नित नव चाव॥
मो में बृथा प्रेम करि मोहन
रहे दुखहि सुख जान।
कैसें मिटै मोह-ब्याधी यह
तिनकी बिषम महान॥
नहिं कोऊ दैवज्ञ, वैद्य जो
करै जथार्थ निदान।
होय चिकित्सा, जा सौं प्रियतम
बनैं स्वस्थ धीमान॥

"सखि! मैं अत्यन्त असहाय हो गयी हूँ—मेरी इस अवस्थामें कोई भी मेरी सहायता नहीं करता। हाय! हाय! तीनों लोकोंको मोहित करनेवाले मेरे श्यामसुन्दर बावले हो गये हैं। (भगवान् श्रीकृष्णकी परम बुद्धिमत्ता, उनकी ज्ञानगरिमा और साथ ही भगवत्ताकी ओर क्षणिक दृष्टि जाते ही वे कहती हैं—) वे तो सहज ही चतुरोंके चूड़ामणि हैं, सहज ही महान् बुद्धिमान् हैं, इतना ही नहीं, वे सम्पूर्ण ज्ञानके आधार, ज्ञाननिधि, आप स्वयं चिन्मय भगवान् हैं। इतनेपर भी, यह असम्भव सम्भव हो गया। उन सर्वथा निर्विकारको निश्चय ही मस्तिष्क-विकार हो गया। इसीसे तो वे अच्छे-बुरेका सारा सोच-विचार भूल गये। यह सत्य है कि मुझमें सहज ही रूप-गुण-सौन्दर्यका सदा अभाव है, तो भी मेरे प्रति नित्य ही उनका नित्य-नवीन चाव बढ़ता रहता है! सचमुच इसी मोह-विकारके वश वे मोहन व्यर्थमें ही मुझसे प्रेम करके दुःखको सुख जान रहे हैं। उनकी यह भयानक मोहकी बीमारी कैसे मिटे? न तो कोई ज्योतिर्विद् है, न कोई सद्वैद्य ही है जो उनके रोगका सच्चा-सच्चा निदान कर दे, जिससे चिकित्सा की जाय और मेरे वे प्रियतम श्यामसुन्दर पुनः स्वस्थ और बुद्धिमान् हो जायँ।"

मेरे कारन सुखबंचित, जो
अग-जगके सुख-मूल।
कहा करूँ, कछु बस नहिं मेरो,
चुभत रहत हिय सूल॥

चतुरभुजा नारायन कौं मैं
　　पूजूँगी सविधान।
करुन पुकार सुनत ही तिनके
　　पिघल जायँगे प्रान॥
दै बरदान करेंगे मो कौं
　　कृपानिधान निहाल।
बरन करेंगे रस-सुखदायिनि
　　सुंदरि कोउ नँदलाल॥
सुख साँचिलो मिलैगो तिन कौं
　　पाइ सरस रसखान।
सुखी होयगौ तब मन मेरौ
　　तिनकौ सुखिया जान॥
यौं निश्चै कर करन लगी वह
　　जप तप परमानंद।
एक लालसा—पावैं प्रियतम
　　अनुपम सुख स्वच्छन्द॥

"समस्त विश्व-ब्रह्माण्डके सुखके मूल वे आज मेरे ही कारण सुखसे वञ्चित हो रहे हैं। मैं क्या करूँ, हाय! मेरा कुछ भी वश नहीं चलता, पर मेरे हृदयमें सदा यह शूल चुभता रहता है। हाँ, अब मैं विधि-विधानसहित चतुर्भुज भगवान् नारायणका पूजन करूँगी। मेरी करुण पुकार सुनते ही उनके प्राण पिघल जायँगे; क्योंकि वे कृपानिधान हैं। वे मुझको मनमाना वरदान देकर निहाल कर देंगे। उनके वरदानसे प्रियतम नन्दलाल किसी रस और सुख देनेवाली सुन्दरीको वरण कर लेंगे। तब उस रसीली रसकी खानको पाकर उन्हें सच्चा सुख प्राप्त होगा। इस प्रकार उनको जब मैं सुखी जानूँगी तो मेरा मन परम सुखी हो जायगा। यों निश्चय करके राधाजी श्रीनारायणका जप तथा तप करने लगीं। उनके मनमें एक ही लालसा है—'मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर स्वच्छन्दतासे अनुपम सुख प्राप्त करें।"

इस उद्देश्यसे वे नारायणकी प्रसन्नताके हेतु अनुष्ठान करने लगीं।

मधुर मधुर, सुंदर सुंदर
　　प्रियतमके मोह-मिटनके काज।
करन लगी राधा आराधन
　　नारायन कौ सब बिधि साज॥
व्रत-उपवास-नेम तन धारे,
　　एक हि रही लालसा जाग।
त्याग करैं मोहन जो करते
　　मोह बिबस मो में अनुराग॥
अतुलनीय सुख लाभ करैं वे
　　पाय जोग्य संगिनि कौ संग।
तब मैं परम सुखी होऊँगी,
　　नाच उठैंगे सगरे अंग॥
एक लगन सौं चली साधना
　　प्रियतम-सुख-वाञ्छा मन लीन।
परम त्यागमय स्व-सुख-कल्पना-
　　लेश-गंध-संबंध-विहीन॥

"उन केवल मधुरिमामय मधुर और केवल सुन्दरतामय सुन्दर प्रियतम श्यामसुन्दरके मोहका नाश करनेके उद्देश्यसे श्रीराधा सब प्रकारकी सामग्री तथा पूजाके साधनसे सम्पन्न होकर श्रीनारायणकी आराधना करने लगीं। उन्होंने शरीरके लिये व्रत-उपवास तथा नियमोंको धारण कर लिया। उनके मनमें केवल एक यही लालसा जग रही थी कि—'भगवान् नारायण ऐसी कृपा करें, जिससे हमारे मोहन, जो मोहवश होकर मुझमें अनुराग रखते हैं, उसका त्याग करके और अपने योग्य किसी संगिनीका संग प्राप्त करके अतुलनीय सुख प्राप्त करें।' ऐसा होनेपर मैं परम सुखी हो जाऊँगी, मेरे सारे अङ्ग आनन्दसे नाच उठेंगे।"

"राधाकी यह साधना एक लगनके साथ चलने लगी। उनका परम त्यागमय मन केवल प्रियतमके सुखकी वाञ्छामें विलीन था और वे अपने सुखकी कल्पनाकी लेशमात्र गन्धके सम्बन्धसे भी रहित थीं।"

विविध पवित्र भाव-तरङ्गोंमें और रस-लीला-लहरियोंमें दिन बीतने लगे। अन्यान्य विचित्र रस-लहरोंके साथ

नारायणाराधनकी यह लहर भी लहराती रही। कुछ दिनों बाद अक्रूरजीके साथ प्रियतम श्यामसुन्दर मथुरा पधार गये। तदनन्तर वहाँसे यह निश्चित समाचार मिला कि उन्होंने मथुरामें ही रहनेका निश्चय कर लिया है और अब वे वृन्दावन नहीं लौटेंगे। तब श्रीराधाको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे नारायणकी कृपासे अपनी मनोकामना पूर्ण हुई जानकर सखियोंसे बोलीं—

प्रानप्रिय मथुरा जाय बसे।
भयौ मनोरथ सफल पुरानौ हदैके संताप खसे॥
जद्यपि ज्वाला जरी हिये बिच स्यामबिरह की भारी।
दियौ परम सुख तदपि स्याम-सुख-काम-जरनि कौं जारी॥
पाइ सुजोग्य संगिनी सुख सौं करत होइँगे लीला।
बिसरि गये हैंगे हरि मो कौं जो गुनरहित असीला॥
नारायनकी परम कृपा तें मन की आसा पूरी।
राधा सुखी भई अब सब बिधि करि प्रिय-सुख-सुध रूरी॥
काल अनंत जरौं बिरहानल, कह्यौ सखिन सौं राधा।
प्रियतम सुखी रहैं, नित नव सुख लाभ करैं बिनु बाधा॥

"सखी! प्राणप्रियतमने मथुरामें स्थिर निवास कर लिया है—वे वहीं जाकर बस गये हैं। अच्छा! आज मेरा पुराना मनोरथ सफल हो गया और मेरे हृदयके सारे संताप दूर हो गये। यद्यपि प्रियतम श्यामसुन्दरके विरहकी भयानक ज्वाला मेरे हृदयमें जल उठी, परंतु उस ज्वालाने, मेरे हृदयमें जो प्रियतम श्यामसुन्दरको सुखी देखनेकी कामनाकी आग जल रही थी, उस आगको जलाकर मुझे परम सुख प्रदान किया। अब वे प्रियतम सुयोग्य संगिनीको प्राप्त करके सुखसे लीला करते होंगे। मुझ गुण-शीलरहितको वे हरि भूल गये होंगे। भगवान् नारायणकी कृपासे मेरी मनकी आशा पूरी हुई। आज राधा प्रियतम श्यामसुन्दरकी वर्तमान श्रेष्ठ सुखकी स्थितिका स्मरण करके सब प्रकारसे सुखी हो गयी है। सखियोंसे राधाने कहा—'मैं अनन्तकालतक विरहानलसे जलती रहूँगी, पर मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर सदा सुखी रहें और बिना किसी बाधाके वे नित्य नूतन सुख प्राप्त करते रहें।'"

यह प्रियतम-सुखलालसा और प्रियतम-सुखके लिये निज-सुख-वाञ्छा-परित्यागका परम त्यागमय आदर्श अतुलनीय है।

जीवन सफल करो

बिना प्रीति नहिं मिलते प्रियतम, बिना त्याग मिलती नहिं प्रीति।
सर्वत्याग इसीसे प्रियतम-प्रीति-प्राप्तिकी सुन्दर रीति॥
धन-सम्पत्ति, मान-पदगौरव, इन्द्रिय-सुखकर भोग अनन्त।
सबको सहज त्याग, जो करता मुक्ति-वासनाका भी अन्त॥
स्व-सुख-वासना-लेश मात्र भी कभी न रहती किसी प्रकार।
मिलती उज्ज्वल प्रीति परम उस भाग्यवान जनको अविकार॥
लहराता इस दिव्य सुधा-रसका है पारावार अगाध।
सफल करो जीवन, उन राधाका कर आराधन निर्बाध॥

जगदम्बा श्रीसीताजी

(लेखक—श्रीहरेशचन्द्र अग्रवाल, एम्० ए०)

[पूर्वप्रकाशितसे आगे]

इसके उपरान्त मायामृगके प्रकट होने तथा जगन्मोहिनी मायारूपिणी सीताके अनुरोध करने एवं उनकी इच्छापूर्तिके लिये मायापति भगवान् श्रीराम—

(निगम नेति सिव ध्यान न पावा । मायामृग पाछें सो धावा ॥)

—धनुष-बाण ले उसके पीछे दौड़ पड़े । तत्पश्चात् भगवान्के लीलासंकेतसे मायामृग मारीचके द्वारा मरते समय 'हे लक्ष्मण ! हे लक्ष्मण !!' चिल्लाने तथा सीताके आग्रहपर लक्ष्मणके न जानेपर श्रीसीताजीने उनको कुछ कठोर वचन कहे ।

बिना बातको आगे बढ़ाये लक्ष्मणजी तुरंत श्रीसीताको वनदेवियोंको सौंपकर चल दिये । इधर लक्ष्मण आगे बढ़े, उधर लंकाधिपति रावण छद्मवेशमें जगदम्बाके सम्मुख पहुँच गया । प्रथम मिष्टभाषी बनकर और बादको अपना परिचय दे भयंकर रूप प्रकट कर वह माताको भयभीत करने लगा । श्रीसीताजी अशान्त होते हुए भी, भयको दबाकर, धैर्य एवं साहससे उससे वार्तालाप करती रहीं तथा श्रीरामका आतङ्क भी दिखाती रहीं—

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥

(वाल्मीकिरामायण ३ । ४७ । ३७)

'पापी निशाचर ! तू सियार और मैं सिंहिनी हूँ । मैं तेरे लिये सर्वथा दुर्लभ हूँ । क्या तू यहाँ मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है ? अरे ! जैसे सूर्यकी प्रभापर कोई हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार तू मुझे छू भी नहीं सकता ।'

अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् ।
नहि रामस्य भार्यां मामानीय स्वस्तिमान् भवेत् ॥

(वाल्मीकिरामायण ३ । ४८ । २३)

'इन्द्रकी पत्नी शचीका अपहरण करके सम्भव है कोई जीवित रह जाय; किंतु रामपत्नी मुझ सीताका हरण करके कोई कुशलसे नहीं रह सकता ।'

इतना कहने-सुननेपर भी, रावणद्वारा हर लिये जानेपर व्याकुल हो जगज्जननी बार-बार आर्तनाद करती हुई चारों ओरके जड-चेतन सभी पदार्थोंको सम्बोधित करती हुई श्रीरामको रावणके द्वारा हरनेकी सूचना देनेका आग्रह करती हैं, जिससे महाबाहु दशरथनन्दनको सभी बातें ज्ञात हो जायँ; क्योंकि अबला होनेके नाते इनकी रक्षाका भार श्रीरामके कंधोंपर है ।

इसके अनन्तर गृध्रराज जटायुके हस्तक्षेप करनेपर उन्हें कुछ धैर्य होता है; किंतु उसके मारे जाने एवं रावणद्वारा पुनः उठाकर ले जानेपर वे फिर चीत्कार करती तथा रावणको धिक्कारती हैं । मार्गमें ऋष्यमूक पर्वतके निकट तथा अन्य स्थानोंपर भी वे अपने आभूषण गिराती जाती हैं, जिससे जिस प्रकार भी सम्भव हो, श्रीरामको उनके हरणकी सूचना प्राप्त हो जाय । लंका पहुँचनेपर और रावणके द्वारा अन्तःपुरमें रक्खे जानेपर भी वे बराबर आँसू ही बहाती हैं । तत्पश्चात लंकाधिपति रावणके समझानेपर वे श्रीरामके प्रति अपना अनन्य अनुराग दिखाकर तिनकेकी ओट करके रावणको कड़ी फटकार देती हैं—

यदि पश्येत् स रामस्त्वां रोषदीप्तेन चक्षुषा ।
रक्षस्त्वमद्य निर्दग्धो यथा रुद्रेण मन्मथः ॥

(वाल्मीकिरामायण ३ । ५६ । १०)

'राक्षस ! यदि श्रीरामचन्द्रजी अपनी रोषभरी दृष्टिसे तुझे देख लें तो तू अभी उसी तरह जलकर खाक हो जायगा, जैसे भगवान् शंकरने कामदेवको भस्म किया था ।'

इस प्रकार जब राक्षसराजने अनुभव किया कि जगन्माता किसी प्रकार भी उसके अधिकारमें नहीं आ सकतीं, तो उसने राक्षसियोंको आदेश दे, श्रीसीताजीसहित उन सबको अशोकवाटिकामें भेज दिया, जिससे वे शान्तिपूर्ण वातावरणमें कुछ सोच-विचार सकें; किंतु उसका ऐसा सोचना व्यर्थ सिद्ध हुआ । दूसरी बार जब वह पुनः निज स्वप्नके आधारपर तथा हनुमान्जीके प्रकट होनेके पूर्व आता है और जनकनन्दिनीके प्रति मनमें श्रद्धा धारणकर तीखे वचन-बाण छोड़ता है तब पुनः पतिव्रता जानकीजी भी व्यङ्ग्य-बाणसे उसे बेधती हैं—

रावण—

सुनौ देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै। इतो सोच तो राम काजै न कीजै॥
बसै दंडकारन्य देखै न कोऊ। जु देखै महाबावरो होय सोऊ॥
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै। हितू नग्न मुंडीनहीं को सदा है॥
अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी। बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी॥
तुम्हें देवि दूषैं हितू ताहि मानै। उदासीन तोसों सदा ताहि जानै॥
महा निर्गुनी नाम ताको न लीजे। सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै॥

—रामचन्द्रिका

सीता—

अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल सर खर धारा क्यों सहै तिक्ष ताकी॥
बिड़कन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै।
सिवसिर ससि श्रीको राहु कैसे सु छीवै॥
उठि! उठि! सठ ह्याँ ते भागु तौलों अभागे।
मम वचन बिसर्पी सर्प जौलों न लागे॥
बिकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरो।
निपट मृतक तो कों रोष मारै न मेरो॥

—रामचन्द्रिका

इसके अतिरिक्त रावणके प्रति तिरस्कार-भाव तथा श्रीरामके प्रति प्रेमभावको धारण किये हुए श्रीसीताको हनुमान्जीने जिस रूपमें देखा, वह विचारने योग्य है—

देखि मनहिं महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥
निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

—मानस

इसी अवसरपर श्रीसीताजी राक्षसियोंसे कहती हैं—

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता॥
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता।

(वाल्मीकिरामायण ५।२४।१०—१३)

'जैसे महाभागा शची इन्द्रकी सेवामें उपस्थित होती है, जैसे देवी अरुन्धती महर्षि वसिष्ठमें, रोहिणी चन्द्रमामें, लोपामुद्रा अगस्त्यमें, सुकन्या च्यवनमें, सावित्री सत्यवान्में, श्रीमती कपिलमें, मदयन्ती सौदासमें, केशिनी सगरमें तथा भीमकुमारी दमयन्ती अपने पति निषधनरेश नलमें अनुराग रखती हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने पतिदेव इक्ष्वाकुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीराममें अनुरक्त हूँ।'

और साथ ही रावणके जानेके उपरान्त बहुत दुखित हो त्रिजटा नामकी राक्षसीसे कहती हैं—

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥

—मानस

लेकिन त्रिजटाके यह कहनेपर—'निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी' सीता और व्याकुल होती और भावावेशमें कहती हैं—

देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

—मानस

उपर्युक्त उदाहरणोंसे श्रीसीताजीके दुःखोंका सरलतासे अनुभव हो जाता है। वे दुखी होकर अपने परतन्त्र जीवनको बार-बार धिक्कारती और प्राणोंको त्यागनेके बारेमें सोचती हैं, किंतु इसी बीचमें त्रिजटा उन्हें अपना स्वप्न सुनाती है, जिससे उन्हें धैर्य होता है—

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥

—मानस

इसके कुछ काल उपरान्त ही अशोक वृक्षपर बैठे हनुमान्जी श्रीरामकी मुद्रिका डाल देते हैं, जिसे पाकर वे बड़ी प्रसन्न होती और कुछ क्षणतक आश्चर्यमें पड़ी रहती हैं और अत्यन्त तद्गतचिता होकर हनुमान्जीद्वारा उच्चरित राम-कथाको सुनती हैं—

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

तत्पश्चात् वे कहती हैं—

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥

—मानस

इतना सुनते ही श्रीहनुमान्जी प्रकट हो गये और

श्रीसीता माता श्रीराम-लक्ष्मणकी कुशलताके समाचार सुननेको इतनी उत्सुक हैं कि वे एक क्षणका भी विलम्ब नहीं चाहतीं—

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमल चित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥

तत्पश्चात् श्रीहनुमान्जीद्वारा श्रीरामके संदेशको सुनकर वे बेसुध हो जाती हैं—

प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

इसी बीचमें श्रीरघुनाथजीद्वारा भेजी हुई मुद्रिका उनका ध्यान पुनः आकृष्ट कर लेती है और वे अपनी मनोभावनाओंको दुःख-सुख-मिश्रित रूपमें निम्नलिखित प्रकारसे प्रकट करती हैं जो विशेष ध्यान देने योग्य है—

यह सूर-किरन तम दुःख हारि। ससिकला किधौं उर सीतकारि॥
कल कीरति सी सुभ सहित नाम। कै राज्यश्री यह तजी राम॥
कै नारायन उर सम लसंति। सुभ अंकन ऊपर श्री बसंति॥
बर बिद्या सी आनंद दानि। जुत अष्टापद मन सिवा मानि॥
जनु माया अच्छर सहित देखि। कै पत्री निश्चयदानि लेखि॥
पिय प्रतीहारिनी सी निहारि। श्रीरामो जय उच्चारकारि॥
पिय पठई मानो सखि सुजान। जगभूषन को भूषन-निधान॥
निज आई हमको सीख दैन। यह किधौं हमारो मरम लैन॥

सुखदा सिखदा अर्थदा, जसदा रस दातारि।
रामचंद्रकी मुद्रिका, किधौं परम गुरु-नारि॥
बहु बनी सहज प्रिया, तमगुन हरा प्रमान।
जगमारग दरसावनी, सूरज किरन समान॥

—रामचन्द्रिका

तत्पश्चात् नारी-भावनाके अधिक बढ़ जानेपर श्रीसीताजी कहती हैं—

श्री पुर में, बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करिहै परतीति॥

—रामचन्द्रिका

तदुपरान्त हनुमान्जीके यह कहनेपर—

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥

अतिशय प्रसन्न होकर एवं स्थितिपर विचारकर वे कह देती हैं—

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥

—मानस

इसके उपरान्त हनुमान्जीका क्या कहना, एक ओर पिताका बल और दूसरी ओर माताकी अनुमति प्राप्त कर, शत्रुरूप रावणको राम-पराक्रमका परिचय कराने एवं रामविपरीत भावनाको धारण करनेके लिये शिक्षा देनेके हेतु वे सारे अशोक-वनको तोड़ने-फ ड़ने लगे और अन्तमें लंका-दहनके उपरान्त आकर माताके चरणोंमें शीश नवाकर खड़े हो गये। तब श्रीसीता माता उनसे कहती हैं—

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा॥
दीनदयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥
तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥
कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिन सो राती॥

—मानस

इस प्रकार जगज्जननीके मनकी अपार व्यथाको सहजमें ही समझा जा सकता है कि राम-वियोगमें किस प्रकार उनके दिन कट रहे हैं। तत्पश्चात् समुद्र पारकर लंकामें श्रीरामके आनेपर लंकाधिपति रावण एक बार पुनः अपनी राक्षसी मायाके द्वारा जनकदुलारी सीतापर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता है। विद्युज्जिह्व नामके राक्षसके द्वारा अशोक-वनमें जाकर श्रीरामका कटा हुआ मायावी शीश सीताके सम्मुख देखने हेतु प्रस्तुत करता है और साथ ही एक काल्पनिक घटना-चित्रणके द्वारा श्रीरामके मारे जानेका वर्णन भी करता है—

सान्त्व्यमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे।
खरहन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः॥

(वाल्मीकिरामायण ६। ३१। १४-१५)

'भद्रे! मेरे बार-बार सान्त्वना देने और प्रार्थना करनेपर भी तुम जिनका आश्रय लेकर मेरी बात नहीं मानती थीं,

खरका वध करनेवाले वे तुम्हारे पतिदेव श्रीराम समरभूमिमें मारे गये।'

> एवमुक्तं तु तद् रक्षः शिरस्तत् प्रियदर्शनम्।
> उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत॥
> (वाल्मीकिरामायण ६।३१।४२)

'रावणके ऐसा कहनेपर वह राक्षस उस सुन्दर मस्तकको सीताके निकट रखकर तत्काल अदृश्य हो गया।' इसपर विदेहनन्दिनी घोर विलाप करती हुई कहती हैं—

> हा हतास्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत।
> इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता॥
> (वाल्मीकिरामायण ६।३२।८)

'हाय! महाबाहो! मैं मारी गयी। आप वीरव्रतका पालन करनेवाले थे। आपकी इस अन्तिम अवस्थाको मुझे अपने नेत्रोंसे देखना पड़ा। आपने मुझे विधवा बना दिया।'

इसी प्रकारसे श्रीसीताजी शोक करती हुई कहती हैं और अपना अन्त निकट समझ विलाप करती हैं; परंतु सरमा नामकी निज सहचरीके द्वारा रावणकी माया एवं रामके आगमनकी सूचनापर धैर्य रखती हैं और उसीके द्वारा रावणकी मन्त्रणा भी जान लेती हैं। वह कहती हैं—

> न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः।
> वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन् नैवोपपद्यते॥
> दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः।
> सहितैः सागरान्तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः॥
> (वाल्मीकिरामायण ६।३३।८–१६)

'भगवान् श्रीराम अपने स्वरूपको जाननेवाले सर्वज्ञ परमात्मा हैं। उनका सोते समय वध करना किसीके लिये भी सर्वथा असम्भव है। पुरुषसिंह श्रीरामके विषयमें इस तरह उनके वध होनेकी बात युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। मैंने स्वयं लक्ष्मणसहित पूर्णकाम श्रीरामका दर्शन किया है। वे समुद्रतटपर ठहरी हुई अपनी संगठित सेनाओंद्वारा सर्वथा सुरक्षित हैं।'

इसके पश्चात् राम-रावण-युद्धके मध्य रामके द्वारा बार-बार सिरके काटनेपर भी रावणके न मरनेपर श्रीसीता-माता दुखी होती हैं, परंतु त्रिजटा राक्षसीके समझानेपर धैर्य धारण करती हैं—

> रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
> मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही॥
> ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥
> बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥
> —मानस

इसपर त्रिजटा बहुत ही सुन्दर रूपमें श्रीरामके द्वारा रावणके न मारनेका कारण कहती है—

> एहि के हृदयँ बस जानकी, जानकी उर मम बास है।
> मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥
> काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
> तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं राम सुजान॥
> —मानस

इस दशामें जनकललीके सम्मुख दुःखसे उऋण होनेके लिये, केवल राम-स्मरण ही एक ऐसी ओषधि है जिससे कि रक्षा सम्भव है, अन्यथा रोगका और कोई निदान नहीं।

इसके पश्चात् युद्धमें इन्द्रजित्से संघर्ष करते हुए श्रीराम-लक्ष्मणके संज्ञारहित होनेपर लंकापति रावण उनकी मृत्युका प्रचार करता तथा राक्षसियोंके साथ पुष्पक विमानपर बैठाकर श्रीसीताजीको निरीक्षणहेतु उस स्थानपर भेजता है, जहाँ राम-लक्ष्मण बंदरोंसे घिरे हुए बेसुध पड़े हैं। उन्हें भूमिपर लेटा हुआ देख तथा प्राणरहित समझ सीताजी घोर विलाप करती हैं—

> ऊचुर्लाक्षणिका ये मां पुत्रिण्यविधवेति च।
> तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः॥
> (वाल्मीकिरामायण ६।४८।२)

'सामुद्रिक लक्षणोंके ज्ञाता विद्वानोंने मुझे पुत्रवती और सधवा बताया था। आज श्रीरामके मारे जानेसे वे सब लक्षणज्ञानी पुरुष असत्यवादी हो गये।'

इसपर त्रिजटाके समझानेपर वे धैर्य धारण करती तथा प्रतिक्षण अपने हृदयमें श्रीरामको बनाये हुए रखती हैं और उन्हींके कल्याणके बारेमें सोचती रहती हैं।

इस घटनाके उपरान्त श्रीसीतामाताके सम्बन्धमें हमें पुनः रावण-वधके बाद ही फिर कुछ ज्ञात होता है अर्थात् उस समय जब श्रीराम हनुमान्जीको माताके पास विजयका

संदेश देनेको भेजते हैं। वहाँ पहुँचकर वहाँके दृश्यको देख हनुमानजी दुखी होते हैं। कुछ क्षण पश्चात् पवनसुत भगवान् श्रीरामका संदेश देते हैं, जिसे सुन वे बहुत प्रसन्न होती हुई कहती हैं—

का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा।
—मानस

× × ×

हिरण्यं च सुवर्णं च रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम्॥
(वाल्मीकिरामायण ६। ११३। २०)

'सोना, चाँदी, नाना प्रकारके रत्न अथवा तीनों लोकोंका राज्य भी इस प्रिय समाचारकी बराबरी नहीं कर सकता।' इसके साथ ही वायुपुत्र श्रीहनुमान्से कहती हैं—

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥
—मानस

तदुपरान्त श्रीरामके आज्ञानुसार जगदम्बाका अनेकानेक प्रकारसे श्रृंगार कराकर लंकापति विभीषण शिविकाके द्वारा उन्हें त्रिभुवनपति श्रीरामके पास लाते हैं। श्रीसीताजीको मातारूपमें देखकर सब प्रसन्न होते और बंदर-रीछ आदि किलकारी मारते हैं। जगन्माता सीताजी भी श्रीरामके दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ होती हैं; परंतु स्वामीद्वारा कुछ कटु शब्दोंके कहनेपर अग्नि-परीक्षाके लिये तैयार होती हैं—

लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥

और अग्नि प्रज्वलित हो जानेपर यह कहकर वे उसमें प्रवेश कर जाती हैं—

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना॥
—मानस

तदुपरान्त ब्रह्माजी तथा अन्य देवताओंने करबद्ध हो श्रीरामकी स्तुति की और अग्निदेव स्वयं प्रकट हो जगदम्बा सीताको गोदमें लेकर श्रीरामतक आये और उन्होंने त्रिभुवननाथसे कहा—

नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा॥
(वाल्मीकिरामायण ६। ११८। ६)

'उत्तम आचारवाली इस शुभलक्षणा सतीने मन, वाणी, बुद्धि अथवा नेत्रोंद्वारा भी आपके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुषका आश्रय नहीं लिया। इसने सदा सदाचारपरायण आपका ही आराधन किया है।' इसपर स्वयं श्रीरामने अग्निदेवसे कहा—

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः।
उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम्॥
(वाल्मीकिरामायण ६। ११८। १७)

'तीनों लोकोंके प्राणियोंके मनमें विश्वास दिलानेके लिये एकमात्र सत्यका सहारा लेकर मैंने अग्निमें प्रवेश करती हुई विदेहकुमारीको रोकनेकी चेष्टा नहीं की।'

ऐसा कहकर श्रीरामने जगदम्बा सीताको प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लिया और अत्यन्त सुखका अनुभव किया।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि जगदम्बा सीताजी पूर्ण पतिव्रता देवी थीं। शत्रुके घरमें कष्ट एवं यातनाओंसे घिरे रहनेपर भी उन्होंने अपने पातिव्रत्य-धर्मपर किसी दशामें भी जरा भी आँच नहीं आने दी। वे अपने स्वामी श्रीरामको ही हर समय ध्यानमें रखती थीं, जिसकी साक्षी स्वयं अग्निदेवने प्रकट होकर श्रीरामके सम्मुख दी और श्रीरामको बाध्य होकर उन्हें न केवल स्वीकार ही करना पड़ा, बल्कि यह भी स्वीकार करना पड़ा कि मैं जनकात्मजाका किसी भी दशामें परित्याग नहीं कर सकता।

इसके पश्चात् लंकासे अयोध्या लौटने एवं गृहस्थाश्रममें पुनः प्रवेश करनेपर जनकनन्दिनी अपने धर्म-पालनमें तत्पर हो जाती हैं। सासुओं, देवरों, अनुचरों आदि सभीके प्रति वे दयावान् हैं और समस्त कार्य सुचारु रूपसे करती हैं। उनके इस आचरणसे सभी प्रसन्न हैं और उन्हें आशीर्वाद देते हैं। धर्माचरण सरल नहीं, निःस्वार्थ धर्मात्मा व्यक्ति ही ऐसा कर सकता है। एकात्मभावको धारण करनेवाला व्यक्ति—चाहे स्त्री हो या पुरुष—एकत्व स्थापित करनेमें सफल हो सकता है।

कुछ कालतक अयोध्यामें रहनेके उपरान्त ही श्रीसीताजीके द्वितीय निर्वासनकी समस्या सामने आती है; परंतु वे उससे

घबरातीं नहीं। शासनके आधारपर अपने त्यागे जानेके सम्बन्धमें उन्होंने बुरा नहीं माना, परंतु परिवार और पतिसे बिछुड़ जानेका उन्हें महान् दुःख था; क्योंकि एक पतिव्रता स्त्री किसी भी दशामें अपने स्वामीसे बिछुड़ना नहीं चाहती—

वह त्रिलोक-मोहिनी विकचता वह प्रवृत्ति आमोदमयी।
वह विनोदकी वृत्ति सदा जो असमंजस पर हुई जयी॥
क्यों रह गई न वैसी अब क्यों कुछ बदली दिखलाती है।
क्यों राकाकी सितामें न पूरी सितता मिल पाती है॥
—वैदेही

सदा आपका चन्द्रानन अवलोके ही मैं जीती हूँ।
रूप-माधुरी-सुधा-तृषित बन चकोरिका सम पीती हूँ॥
मिले बिना ऐसा अवसर कैसे मैं समय बिताऊँगी।
अहह! आपको बिना खिलाये मैं कैसे कुछ खाऊँगी॥
—वैदेही

तदुपरान्त श्रीरामके आदेशानुसार सुमित्राकुमार लक्ष्मण-जीद्वारा सीताजीको गङ्गापार तपोवनमें छोड़नेपर एवं दुखी होनेपर भी वे लक्ष्मणसे कहती हैं—हे लक्ष्मण! आर्यपुत्रसे जाकर कह देना—

यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात्।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ॥
(वाल्मीकिरामायण ७।४८।१६)

'राजन्! पुरवासियोंके प्रति धर्मानुकूल आचरण करनेसे जो पुण्य प्राप्त होगा, वही आपके लिये उत्तम धर्म और कीर्ति है। पुरुषोत्तम! मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी चिन्ता नहीं है।'

यथापवादं पौराणां तथैव रघुनन्दन।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः।
(वाल्मीकिरामायण ७।४८।१७-१८)

'रघुनन्दन! जिस तरह पुरवासियोंके अपवादसे बचकर रहा जा सके, उसी तरह आप रहें। स्त्रीके लिये तो पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है। इसलिये उसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना चाहिये।'

इस प्रकार सुख-दुःख दोनों अवस्थाओंमें सीताजी केवल श्रीरामके हितपर ही ध्यान देती हैं। इसके पश्चात् अयोध्यामें लव-कुशके आनेपर और अपनेको शुद्ध एवं पवित्र प्रमाणित करनेके विचारसे जब श्रीसीताजी सभाके मध्य शपथ ग्रहण करती तथा भगवती पृथ्वी माताको प्रकट होनेके लिये प्रेरित करती हैं, तब वे कहती हैं—

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
(वाल्मीकिरामायण ७।९७।१५)

'यदि मैं मन, वाणी और क्रियाके द्वारा केवल श्रीरामकी आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें स्थान दें।'

इस प्रकार इतना कहनेके उपरान्त ही वे पातालमें प्रवेश करती हैं और श्रीरामके पृथ्वीमाताके प्रति क्रोधपूर्ण वचनोंके कहनेपर भी वे वापिस नहीं आतीं और स्वर्गमें प्रवेश करती हैं तथा स्वर्गके समस्त देवगण उनपर पुष्प वर्षा करते हैं।

उपर्युक्त वर्णनपर विचार करनेसे निष्कर्ष स्पष्ट है कि जगदम्बा सीताजीके समान आदर्श स्त्री-चरित्र धारण करना किसी भी स्त्रीके लिये असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है; क्योंकि आपत्तिकालमें भी अपने धर्मको बनाये रखना सरल नहीं। जो ऐसा करे, शुद्ध आत्माके आधारपर, वह धन्य है और परमपदकी अधिकारिणी है। माताके सभी गुण अनुकरणीय हैं। उन्होंने अपने चरित्रसे समस्त भूमण्डलको पवित्र कर दिया है। साक्षात् भगवती होते हुए भी उन्होंने मानव-जीवनके समस्त पहलुओंको अपनाया था और सभीमें सफलता प्राप्त कर अपने नाम सीताको सार्थक सिद्ध किया था।

केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत्को गर्व था,
गृह-देवियाँ भी थीं हमारी देवियाँ ही सर्वथा।
था राम-जानकी-सदृश गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्गमें,
दाम्पत्यमें वह सौख्य था जो सौख्य था अपवर्गमें॥
—भारत-भारती

तुलसीके ब्रह्म राम

(लेखक—डा० श्रीगोपीनाथजी तिवारी)

श्रीतुलसीदासजीकी भक्तिके प्रधान आधार हैं—राम, उनका जीवन और उनका नाम। तुलसीके राम, वे ही नहीं हैं, जो कबीरके थे। संतों, नाथोंद्वारा बड़ा जोरदार प्रचार था कि राम तो निर्गुण एवं अव्यक्त हैं, वे मनुष्य नहीं हो सकते हैं। ये अवतारी रामका विरोध कर रहे थे। कबीरका उद्घोष था—

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम कर मरम है आना॥

और स्पष्ट करते हुए कबीरदास कहते हैं—

दसरथ कुल अवतरि नहिं आया। नहिं लंका के राव सताया॥
नहिं देवकि के गरभहि आया। नहीं जसोदा गोद खेलाया॥

संत गुरु नानकदेवने भी अवतारवाद और रामके विरुद्ध अपना उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि परमात्मा तो निर्भय और निरंकार हैं, रामादिक तुच्छ और हेय हैं—

नानक निरभउ निरंकारु होरि केते राम रवाल॥

राम कैसे परमात्मा हो सकता है? वह तो स्त्रीके लिये रोया, लक्ष्मणके लिये उसका मन दुखी हुआ। उसने हनुमान्‌से सहायता ली। यह तो रावणकी मूर्खता थी कि उसने रामको भगवान् जाना और उसे अपनी मृत्युका कारण समझा—

मन महि झूरे रामचंद्र सीता लछमणु जोगु।
हणवंतरु आराधिआ आइआ करि संजोगु॥
भूला देतु न समझई तिनि प्रभ कीए काम।
नानक बेपरवाह सो, किरतु न मिटई राम॥

कबीरकी भाँति नानकदेवने भी अव्यक्त—निर्गुण ब्रह्मकी उपासना प्रचारित की।

तुलसीदासके सामने इन लोगोंका प्रचार था। अतः उन्होंने अपने काव्यका लक्ष्य बनाया दशरथसुत रामको परमात्मा सिद्ध करना। मानसका प्रधान उद्देश्य यही है। तुलसीदास जिस रामके उपासक हैं वह केवल निर्गुण-निराकार ही नहीं, अवतार लेनेवाले दशरथसुत मानवी राम भी हैं। मानवी रामको ही वे अपने हृदयमें स्थान देते हैं। मानसके प्रत्येक काण्डके प्रारम्भमें जो संस्कृतमें गोस्वामीजीने स्तुतियाँ दी हैं, वे इस तथ्यको पुष्ट करती हैं। इन स्तुतियोंमें उन्होंने इच्छा प्रकट की है—धनुषबाणसहित, सीता, लक्ष्मणके साथ राजा राम मेरे हृदयमें आसीन रहें, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
(अयोध्याकाण्ड)

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे॥
(अरण्यकाण्ड)

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः॥
(किष्किन्धाकाण्ड)

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥
(सुन्दरकाण्ड)

ये स्तुतियाँ गोस्वामीजीकी हैं। विनयपत्रिकाकी राम स्तुतियोंमें भी यही भाव भरा है—वहाँ भी वे धनुषधारी रामको, सीता-लक्ष्मणके साथ हृदयमें आमन्त्रित करते हैं।

मानसके वृद्ध अत्रि ऋषि भगवान् रामसे कहते हैं—

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलम्॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकम्॥
दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनम्॥

युवा सुतीक्ष्ण भी कहते हैं—

श्याम तामरस दाम शरीरं।
जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं।
पाणि चाप शर कटि तूणीरं।

अगस्त्य ऋषिने भी वर माँगा—

यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥

ब्रह्मा स्तुति करते हैं—

जय राम सदा सुख धाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे॥
सर चाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन लोचन भूपवरं॥
नृपनायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥

देवेन्द्र कहते हैं—

जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम॥
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप॥
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत॥

शम्भुकी कामना है—

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥

वेदोंकी वाणी है कि हम आपके उन चरणोंको भजते हैं, जो वनमें घूमते थे—

ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

कवितावलीके एक विशिष्ट सवैयेमें वे कहते हैं कि अन्तर्यामीसे बाहर घूमनेवाला, अलखकी अपेक्षा सामने दिखायी देनेवाला अवतारी या साकार प्रभु बड़ा है; क्योंकि उसके हृदय है और वह हृदय भक्तको विपत्तिमें देखकर द्रवित हो उठता है—

अंतर्जामिहु तें बड़ बाहिरजामि हैं राम, जे नाम लिये तें,
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें।
आपनि बूझि कहैं तुलसी, कहिबेकी न बावरि बात नियें तें,
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हियें तें॥

इस प्रकार उन संतों, नाथोंको उत्तर दिया जो भगवान्‌को केवल अन्तर्यामी और अलख मानकर दाशरथि रामको भगवान् माननेका विरोध कर रहे थे। अब दूसरी ओर वह विचारधारा है जो रामको केवल राजा एवं मनुष्य मान रही थी। बौद्ध कथाओंमें राम एक राजा मात्र थे और जैन-कथाओंमें तो वे कई सहस्र विवाह करते हैं। इनको उत्तर दिलाते हुए उन्होंने विभीषणसे कहलाया है—

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥

अंगद कुछ अधिक कठोर हो कहता है—

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥

इस विचारधाराका प्रतीक रावण है, जो रामको केवल मानवी राजा मानता है। मन्दोदरीने इस विचारका खण्डन सबसे अधिक किया है और कई बार किया है। वह कहती है—

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू॥

पुनः दूसरी बार समझाती हुई वह कहती है—

पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु॥

रामको नर माननेवाला एक और दल था जो बौद्धिक तर्कोंद्वारा अवतारवादका खण्डन करता था। ये लोग कहते थे कि यदि राम ईश्वर होते तो रावणको वध करने लंका क्यों गये? सीताको कौन चुराकर ले गया था, ये क्यों न जान गये? उनको उत्तर देना सरल न था। अतः कई रूपोंमें तुलसीने इनको जवाब दिया है। मानसका कथा-भवन इन्हीं बौद्धिक शंकाओंपर खड़ा किया गया है। चार व्यक्ति शंका करते हैं—देववर्गकी सतीपार्वती, ऋषिवर्गके भरद्वाज, पशु-पक्षी-वर्गके गरुड और मनुष्यवर्गके तत्कालीन मनुष्य।

सतीको संदेह है—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

मुनि भरद्वाज महामुनि याज्ञवल्क्यके सामने अपनी शंका रखते हैं—

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥
प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥

रामको मेघनादद्वारा प्रसारित नागपाशमें बँधा देखकर गरुड़को बड़ा संदेह हुआ और वह सोचने लगा—

भव बंधन तें छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥

उस समयके बुद्धिवादी एवं तार्किक जो राजा रामको भगवान् न मानकर कह रहे थे, वह सब तुलसीके सामने था ही। अतः तुलसीने अपने काव्यमें राजा रामको अवतारी

सिद्ध करनेका सर्वोत्तम प्रयास किया। यह तुलसीके मानसकी ही देन है कि आज हम उत्तरी भारतमें जिन रामको मान्यता दे रहे हैं, वे ईश्वर हैं, विष्णु हैं, ब्रह्म हैं। वाल्मीकिके राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं, किंतु तुलसीके राम ब्रह्म हैं। आज भारतमें ब्रह्म-रामके गुण गाये जाते हैं, यह तुलसीदासजीका ही प्रभाव है।

तुलसीदासजीने अपनेसे पूर्वके सभी ईश्वरीय रूपोंका संनिवेश अपने राममें कर दिया है। तुलसीके समयतक ईश्वरके तीन रूप प्रचारित थे। निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म और पौराणिक बिष्णुरूप। इन तीनोंका समाहार तुलसीके राममें है। ब्रह्मके दो रूप हैं—निर्गुण और सगुण। ये दोनों रूप राममें उपस्थित हैं। तुलसी केवल निर्गुण या केवल सगुण रूपको मान्यता नहीं देते हैं, वे कहते हैं—निर्गुण और सगुण एक ही ब्रह्मके दो रूप हैं—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥

निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु तुलसीदास।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥

इसमेंसे ब्रह्मका अगुण या निर्गुण रूप प्रथम है। वह निर्गुण ब्रह्म सगुण होता है। वह जब चाहे सगुण बन जाय।

निर्गुण रूप—

अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥

इनमें दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं—निर्मम और निरञ्जन। वह निरञ्जन (मायारहित) है यह तो ठीक है, किंतु वह निर्मोह भी है। अतः भक्तके प्रति ममता करनेके लिये तुलसीने सगुणको अधिक प्रधानता दी। साथ ही यह निर्गुण एवं निरञ्जन है। अद्वैतवादियोंका निर्गुण ब्रह्म यही है।

जय जय अबिनासी सब घटबासी ब्यापक परमानंदा।

इस निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्ममें भिन्नता नहीं है। वह एक ही है किंतु उसके दो रूप हैं। जब वह गुणोंको धारण करता है, भक्तोंपर दया करता है तो वह सगुण हो जाता है। इस सगुण ब्रह्मको तुलसीने निर्गुणकी अपेक्षा अधिक मान्यता दी है; क्योंकि सगुण होनेके कारण वह लीलाधारी एवं दयावान् बन जाता है और भक्तोंका दुःख दूर करनेको अवतार लेता है। विशिष्टाद्वैत मतकी ओर यहीं तुलसीका झुकाव दिखायी देता है। सगुण होनेसे यह अभिप्राय नहीं है कि वह निर्गुण-निराकार, अजन्मा-रूप खो चुका है। नहीं, उसकी वे विशेषताएँ उसमें हैं। उनके साथ वह अनेक गुण और अपना लेता है एवं मायाके परा-रूपको भी साथ रखता है, जो उसकी एक शक्ति है। ऐसी अवस्थामें भी वह मायाके मोहकारी रूपसे अलग है, उसपर मायाका प्रभाव नहीं पड़ता है, वरं माया ही उसके संकेतसे कार्य करती है।

रामके सगुण रूपकी प्रधानता कई स्थानोंपर वर्णित है। वेद कहते हैं—

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥

दोहावलीमें निर्गुणको अङ्क और सगुणको गणितका अक्षर बताया है। इन दोनोंमें महत्त्व अक्षरका है, अङ्कका नहीं। २० रु०मेंसे यदि अङ्क जाता है तो २ रु० बचता है, किंतु २ भाग जाय तो हाथमें शून्य है—

अंक अगुन आखर सगुन समुझिअ उभय प्रकार।
खोए राखे आपु भल तुलसी चारु बिचार॥

मानसका काकभुशुण्डि-प्रसंग इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। काकभुशुण्डि भगवान्‌की खोजमें ऋषियोंके पास जाता है। वह कहता है—

निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥

लोमश ऋषिके पास जाकर वह प्रार्थना करता है—

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान॥

इसपर लोमश अद्वैती निर्गुण ब्रह्मका उपदेश करने लगे—

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मनगोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुखरासी॥
सो तैं ताहि तोहिं नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥
बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा॥

इसपर काकभुशुण्डि अपने पूर्वजन्ममें ब्राह्मण-रूप धरे मुनि लोमशसे कहता है—

पुनि मैं कहेउ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥

अब गुरु-शिष्यमें हठ पड़ गयी। लोमश बार-बार निर्गुणका उपदेश देते; किंतु ब्राह्मणकुमार जो आगे भुशुण्डि बना, सगुनका पक्ष लेता है। फलतः लोमश ऋषिने क्रुद्ध होकर उसे काक बननेका शाप दे दिया। काकभुशुण्डि इस सगुणके प्रति अपनी दृढ़ धारणा प्रकट करते हैं।

स्वयं भगवान् रामके वचन हैं—

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम॥

इन्द्र लङ्काकाण्डमें रामसे कहते है—

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव॥
मोहि भाव कोसल भूप। श्री राम सगुन सरूप॥

रामावतार धारण करनेवाला यही सगुण ब्रह्म है, यह तुलसीदासजीने बालकाण्डमें स्पष्ट कर दिया है। मनु-शतरूपा दोनों तपस्यारत हैं। बार-बार ब्रह्मा-विष्णु-महेश जाते हैं; किंतु वे दोनों टससे मस नहीं होते हैं। तब सगुण ब्रह्म द्रवित होते हैं। उन्होंने आकाशवाणीद्वारा कहा—'वर माँग।' मनु-शतरूपाने कहा—

जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

ऐसा सुनकर सगुण ब्रह्म सामने आये—

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

सगुण ब्रह्म मानवरूपमें दर्शन दिये। ये आदिशक्ति अर्थात् सीतासहित सामने आये। देखकर दोनोंने वर माँगा कि आप हमारे पुत्र बनिये। सगुण ब्रह्म रामने स्वीकार किया। इससे तुलसीदासने सिद्ध किया कि सगुण ब्रह्मका साकार रूप सदा प्रतिष्ठित है। यह अवतार धारण कर लेता है।

पृथ्वी गायरूपमें देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास गयी। वह राक्षसोंके अत्याचारोंसे पीड़ित थी। सब देवता विचार करने लगे कि भगवान् कहाँ मिलेंगे। उस समाजमें शिव भी थे। उन्होंने कहा—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

प्रेमपूर्वक देवताओंने प्रार्थना की—

१–जय जय अबिनासी सब घटबासी ब्यापक परमानंदा।
२–अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
३–जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
४–निसि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥
जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥

प्रार्थनाका प्रभाव उत्पन्न हुआ; क्योंकि प्रेमपूर्वक की गयी थी। ब्रह्मकी वाणी आकाशद्वारा सुनायी पड़ी—

जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥

वाणीसे बोलनेवाला 'सगुण ब्रह्म' ही हो सकता है जिसका वाक् अङ्ग होना ही चाहिये। सगुण ब्रह्मसे एकता स्थापित करते हुए गगन-वाणीमें ब्रह्म कहते हैं—मनु-शतरूपा (कश्यप-अदिति) ने तप किया था तो मैंने उन्हें वर दिया था कि मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा। देवताओंको वर देनेवाले ब्रह्म ही राम थे, इसकी सिद्धि विनयपत्रिकासे भी होती है—

जयति सच्चिद्व्यापकानंद पर ब्रह्म-पद विग्रह व्यक्त लीलावतारी।
विकल ब्रह्मादि, सुर, सिद्ध, संकोचवश, विमल गुण-गेह नर-देह-धारी॥
(वि० प० ४३)

सगुण ब्रह्मकी तीन शक्तियाँ हैं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ब्रह्म इन तीनोंसे श्रेष्ठतर हैं; क्योंकि वे अङ्गी हैं और ये तीनों अङ्ग हैं। इन तीनों शक्तियोंमें भी विष्णुका महत्त्व पुराणोंमें बढ़ गया है; क्योंकि वे जगके रक्षक हैं। फलतः पुराणोंमें विष्णु ही अवतार लेकर राक्षसोंका दमन करते हैं और देव-ब्राह्मण-गाय-भक्तोंकी रक्षा करते हैं। विष्णु, सगुण ब्रह्मसे अलग नहीं हैं; क्योंकि वे ब्रह्मका ही एक रूप हैं। पुराणोंमें विष्णुका जो रक्षक रूप है, उसे भी तुलसीदासजीने सगुण ब्रह्मके साथ मिलाया है। नारद-प्रसंगमें नारद विष्णुसे रूप माँगने चले। वे क्षीर-सागर नहीं गये, वरं शील-निधि राजाके नगरसे बाहर होते ही प्रार्थना कर भगवान्‌को प्रकट करते हैं—

बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥

नारद स्वयंवरमें गये। वहाँ हरि स्वयं राजा बनकर पहुँचे और नृप-कुमारीने इनके ही गलेमें वरमाला डाल दी—

धरि नृप तनु तहँ गयउ कृपाला। कुँअरि हरषि मेलेउ जयमाला ॥
दुलहिनि लै गे लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा ॥

दुखी नारदने मार्गमें हरिके साथ रमाके अतिरिक्त इस राजकुमारीको देखा—

बीचहि पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी ॥

मुनिने क्रुद्ध हो शाप दिया—

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु स्राप मम एहा ॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी ॥

नारदने शाप दिया कि 'तुमने नरदेह धारण कर मुझे ठगा है। जाओ, नरदेह धारण कर पृथ्वीपर पत्नी-वियोग सहो।' देवताओंके वरदान-प्रदान-प्रसंगमें सगुण ब्रह्म कहते हैं कि नारदका शाप जिस विष्णुको मिला था, वह मेरा एक रूप था। मैं नारदके उन वचनोंको सत्य करूँगा। सगुण ब्रह्म देवताओंसे कहते हैं—

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ॥

जन्म-समय कौसल्याके सामने विष्णु आये थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीके राम ब्रह्म (निर्गुण-सगुण) हैं, एवं विष्णु हैं। रामकी अनेक स्तुतियोंसे यह तथ्य प्रमाणित है—

नित्य, निर्मम, नित्यमुक्त, निर्मान, हरि, ज्ञानघन, सच्चिदानंदमूलं
सर्वरक्षक, सर्वभक्षकाध्यक्ष, कूटस्थ, गूढार्चि, भक्तानुकूलं ॥
सिद्ध-साधक-साध्य, वाच्य-वाचकरूप, मंत्र-जापक जाप्य, सृष्टिस्रष्टा
परम-कारण, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुण, निर्गुण, सकल दृश्य-द्रष्टा॥
व्योम-व्यापक, विरज, ब्रह्म, वरदेश, वैकुंठ, वामन विमल ब्रह्मचारी।
(वि० प० ५३)

उरगनायक-शयन, तरुण पंकज-नयन, छीरसागर-अयन, सर्ववासी
नित्य निर्मुक्त, संयुक्तगुण, निर्गुणानंद, भगवंत, न्यामक, नियंता।
(वि० प० ५५)

वरद, वनदाभ, वागीश, विश्वातमा, विरज, वैकुंठ-मंदिर-बिहारी।
व्यापक-व्योम वंदारु, वामन, विभो, ब्रह्मविद, ब्रह्म, चिंतापहारी ॥
....

नित्य, निर्मोह, निर्गुण, निरंजन, निजानन्द, निर्वाण, निर्वाणदाता।
निर्भरानंद, निःकंप, निःसीम, निर्मुक्त, निरुपाधि, निर्मम, विधाता॥
अनघ, अद्वैत, अनवद्य, अव्यक्त, अज, अमित, अविकार, आनंदसिंधो।
अचल, अनिकेत, अविरल, अनामय, अनारंभ, अम्भोदनादहन-बंधो॥
(वि० प० ५६)

नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं ॥
भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं ॥
तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं ॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं ॥
(मानस, अरण्यकाण्ड)

अज व्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा ॥
गुन ग्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभुं बिरजं॥
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं। मद मार मुधा ममता समनं ॥
अनवद्य अखंड न गोचर गो। सबरूप सदा सब होइ न गो॥
(मानस, लंकाकाण्ड)

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे ॥
अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं ॥
(मानस, उत्तरकाण्ड)

प्रायः सभी स्तुतियोंमें रामके ये तीन रूप प्राप्त होते हैं। हरि, कंजनाभ, उरगनायकसयन, क्षीरसागरअयन, इन्दिरा-पति, श्रीरमन, रमेस इत्यादि विष्णुरूप-द्योतक अभिधान हैं। ब्रह्मवाचक शब्द भरे पड़े हैं, जिनमें सगुण और निर्गुण शब्दोंका अलगसे भी उल्लेख है—संयुक्त गुन, निर्गुन, गुननिधान, सगुन-निर्गुन रूप—इत्यादि इसके पुष्ट प्रमाण हैं। एक ओर वे विष्णुरूप हैं तो दूसरी ओर विष्णु, ब्रह्मा, महेशके अङ्गी ब्रह्म होनेसे त्रिमूर्तिसे श्रेष्ठतर हैं। गोस्वामीजीने इसीलिये स्थान-स्थानपर ब्रह्म—रामको त्रिमूर्तिसे बढ़कर बताया है—

जगु पेखन तुम्ह देखनि हारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे।
(मानस बा० का०)

जाकी माया बस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायौ।
(मानस)

देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका ॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा ॥
(मानस)

हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई ॥
(वि० प० १३५)

इन उक्तियोंसे यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि विष्णु नितान्त हेय हैं। गोस्वामीजी तो केवल रामका ब्रह्मत्व यहाँ प्रतिपादित करते हैं। रामके ब्रह्म-रूपपर उनका ध्यान है।

यही वह रूप है जो वेदोंमें वर्णित है। तुलसीदासजीने स्थान-स्थानपर कहा है कि वेदोंमें रामकी चर्चा है और वे रामका गुण गाते हैं—

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु॥
... ...
जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥
... ...

इसका यह अर्थ नहीं है कि वेदोंमें दाशरथि-रामकी कथा कही गयी है। कुछ महानुभावोंने वेदोंमें रामकथा खोजी है। यदि रामकथा वेदोंमें है तो दाशरथि राम वेदोंसे पूर्वके हैं। यदि पूर्वके नहीं हैं तो वेदोंमें ये अंश प्रक्षिप्त हैं अथवा वेद राम और कृष्ण-जन्मके बादतक संकलित हुए। सभी विद्वान् वेदोंको सबसे प्राचीन मानते हैं, वे आर्योंके आदिग्रन्थ हैं, अतः वेदोंमें रामकथा नहीं हो सकती है। हाँ, रामका नाम एवं उसका गुणगान हो सकता है। तुलसीदासजीकी निम्न पंक्तियोंसे यह स्पष्ट है—

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेतिनेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥
सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
नेति नेति कहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि निरूपा॥
मायागुनग्यानातीत अमाना, वेद-पुरान भनंता।

वेदमें राम, दशरथ, सीता इत्यादि कुछ शब्द मिलते भी हैं, तो वे वेदकालीन महापुरुषों एवं देवी-देवताओंके नाम हैं। इन्हींके अभिधानोंपर आगे महापुरुषोंका नामकरण हुआ। जिस रामका वर्णन वेद करते हैं वह सर्वत्र रमनेवाला 'ब्रह्म' है। तुलसीदासजी इसी ब्रह्म रामको वेदोंमें वर्णित बताते हैं।

मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्

(लेखक—प्राध्यापक श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र)

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं, परम पुरुष हैं। उनमें भगवत्ता एवं ऐश्वर्यता दोनों हैं। किंतु भक्तोंकी दृष्टिमें उनका माधुर्य ही सबसे बढ़कर है। वे मधुराधिपति हैं, आनन्दस्वरूप एवं रसस्वरूप हैं और यही उनका यथार्थ स्वरूप है। ऐश्वर्य देखकर हम विस्मित होते हैं, माधुर्य हमें विमुग्ध करता है। ऐश्वर्य चमत्कार उत्पन्न करता है, माधुर्य अनन्तके रसको उच्छल करके अनुराग उत्पन्न करता है। भगवान् श्रीकृष्णके ऐश्वर्य एवं माधुर्य—दोनों ही आनन्द हैं। किंतु अपने भक्तोंको अनिर्वचनीय लीलामाधुर्यद्वारा ही उन्होंने मुग्ध किया है। भक्त भगवान्को इस रूपमें ही देखना चाहते हैं। भगवान्ने कुरुक्षेत्रके रणाङ्गणमें जब अर्जुनको अपना विराट् रूप, अपना ऐश्वर्य दिखलाया; तब अर्जुनके हृदयमें भीतिका संचार हो आया—

भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।

भयसे मन अति व्यथित हो उठा है।

तदेव मे दर्शय देव रूपम्।

अपना वही देवरूप दिखाइये। वह रूप है—

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।

किरीट, गदा एवं चक्र धारण किये हुए आपका जो रूप है, मैं उसी रूपमें आपको देखना चाहता हूँ, ऐश्वर्य देखकर भीति एवं विस्मयसे हम दूर हट जाते हैं, माधुर्य हमें अपनी ओर खींचता है। ऐश्वर्य प्रेमको शिथिल करता है, माधुर्य रसघन। माधुर्यमें भक्त और भगवान् एक हो जाते हैं। कौन बड़ा और कौन छोटा? भेदाभेदसे ऊर्ध्व। भगवान्के लीलासहचर भी मधुमय बन जाते हैं।

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
गोपा मधुरा गावो मधुरा·········॥

गोपियाँ मधुरा हैं, उनकी लीला मधुर है, उनका संयोग मधुर है, वियोग मधुर है, गोप मधुर है, गौएँ मधुर हैं। भगवान्के इस रूपमाधुर्यमें ही भगवत्ताका सार है। महाप्रभु वल्लभाचार्य कहते हैं—

१-(क) नीलकण्ठसूरिकृत 'मंत्र रामायण'। (ख) रामकुमारदासजीकृत 'वेदोंमें रामकथा'

सुन्दरगोपालम् उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरम् ।
वृन्दावनचन्द्रमानन्दकन्दं परमानन्दं धरणिधरम् ॥
वल्लभघनश्यामं पूर्णकामम् अत्यभिरामं प्रीतिकरम् ।
भज नन्दकुमारं सत्सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥

'जिनके हृदयमें वनमाला है, नेत्र बड़े-बड़े हैं, जो शोकहारी' वृन्दावनके चन्द्रमा, परमानन्दमय और पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं, जो सबके प्रिय, मेघके समान श्यामल, पूर्णकाम, अत्यन्त सुन्दर और प्रेम करनेवाले हैं; उन सच्चे सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन, मनमोहन गोपाल श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो।'

चार प्रकारके वैचित्र्यसे ब्रजलीला माधुर्यमण्डित है—रूपमाधुर्य, वेणुमाधुर्य, प्रेम-माधुर्य एवं लीलामाधुर्य। इन चार प्रकारके माधुर्यसे ही वृन्दावनलीला अनन्यसाधारण है। जब भगवान्में अपने अनन्त माधुर्यका आस्वादन करनेकी कामना तीव्रतर हो उठती है, तब उस कामनाको चरितार्थ करनेके लिये वे लीलाविग्रहरूप धारण करते हैं—निर्गुण ब्रह्म सगुण बनकर लीला-विस्तार करता है। प्रेमस्वरूपिणी राधा ह्लादिनी शक्तिके रूपमें लीला-सहचरी बनती है।

राधाकृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिः।

दोनों एक हैं, केवल लीलाके लिये दो भाव हैं। राधा परमा प्रकृति हैं। केवल राधा ही नहीं, अन्यान्य व्रजाङ्गनाएँ और व्रजबालकगण भी रसस्वरूप हैं। गोलोकमें इन लीला-परिकरोंके साथ उनकी नित्य-लीला चलती रहती है। यही भगवान्का नित्य लीलाधाम है और यहाँकी चिरन्तन लीला दिव्य होनेके कारण लौकिक जीवोंके लिये अनुभवगम्य नहीं है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा गया है, गोलोकमें राधाकृष्णका नित्य रास चलता रहता है। एक बार गोलोकपति श्रीकृष्ण-ने लोक एवं लोकपालकी सृष्टि करके देवगणसहित सुरम्य रासमण्डलमें गमन किया—

एताम् सृष्ट्वा जगामासौ सुरम्यं रासमण्डलम्।
एतैः समेतो भगवानतीव कमनीयकम् ॥

उनके रासमण्डलमें उपविष्ट होते ही उनके वामपार्श्वसे एक कन्याका आविर्भाव हुआ—

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः।

यही श्रीराधा हैं। आविर्भूता होते ही श्रीकृष्णके साथ सम्भाषण किया और एक आसनपर बैठकर उनका मुख-कमल निरीक्षण करने लगीं। इस रूपमें दोनोंका मिलन हुआ।

सा च सम्भाष्य गोविन्दं रत्नसिंहासने परे।
उवास सस्मिता भर्तुः पश्यन्ती मुखपंकजम् ॥

यह तो प्रकृतिके परपार जो परव्योम है, उसके ऊपरी भागमें अवस्थित गोलोकधामकी नित्यलीला है। मर्त्यभूमि वृन्दावनमें जो लीलानुष्ठान चलता रहता है, वह उनकी प्रकट लीला है।

किंतु भक्त कवियोंने भगवान्की अप्रकट लीलाकी अपेक्षा प्रकट लीलाको अधिक महत्त्व दिया है। गोलोकधाममें श्रीकृष्ण नित्य किशोर हैं। वृन्दावनधामकी प्रकटलीलामें बाल्य एवं सख्यभावका जो रस-वैचित्र्य है, वह अप्रकट लीलामें नहीं है। योगमायाके प्रभावसे भगवान् (दिव्य) जन्म ग्रहण करके बाललीला किशोरलीला करते हैं और वात्सल्य, सख्य, दास्य आदि रसवैचित्र्यका आस्वादन करते हैं। शिशुरूपमें माता यशोदाका वात्सल्य, सखारूपमें ग्वालबालोंका सख्य, भक्तोंका दास्य—रसकी इन विविधताओंका आस्वादन इस धराधामपर ही सम्भव हो सकता है। अप्रकट लीलाके ही सहचर प्रकट लीलामें गोप-गोपीके रूपमें आविर्भूत होकर प्रेमोज्ज्वल-लीलामें रसमग्न होते हैं। यह रस क्या है? एक अलौकिक दिव्य आनन्दानुभूति। चित्तमें जब सात्त्विक भावका उन्मेष होता है, रज और तम तिरोहित हो जाते हैं, उस अवस्थामें एक अपूर्व, लोकोत्तर, अखण्ड आनन्दचिन्मय भाव उदित होता है—'जो ब्रह्मस्वाद-सहोदर' है, सहृदय बोद्धा अनुभववेद्य—यही 'रस' है। इसलिये श्रीकृष्णकी रासलीलामें रसकी पराकाष्ठा एवं माधुर्यकी चरम सीमा मानी जाती है। जो 'रसो वै सः' हैं, वही 'रस-ब्रह्म' रसमूर्ति, रसराज, रसिकशेखर श्रीकृष्णके रूपमें ब्रज-गोप-गोपियोंके साथ चिदानन्दमयी क्रीड़ा करते हैं। भक्तजनोंपर अनुग्रह करके ही उनका चित्ताकर्षणके लिये भगवान्ने अनेकानेक पार्थिव लीलाएँ की हैं। भागवतकारके अनुसार—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३३ । ३७)

भक्तोंके प्रेमरसके निर्यासका आस्वादन करना इस लीला-का उद्देश्य है।

मनुष्य जिस प्रकार दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर अपने रूप-लावण्यका अनुभव करता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण अपनी रसस्वरूपताको गोप-गोपियोंमें प्रतिबिम्बित करके उसका आस्वादन करते हैं। रसास्वादन-कालमें अपने ऐश्वर्यभावको तिरोहित कर देते हैं।

श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी अपूर्व है। जिनके मस्तकपर मनोहर मोर-पंखका मुकुट है, हाथोंमें सुरीली बाँसुरी है, जिनके बड़े-बड़े सुन्दर नेत्र हैं, जिनकी चितवन और मुसकान अति मनोहर है, जिनके कानोंमें कदम्ब-पुष्पोंके कुण्डल हैं, परम सुन्दर कपोल हैं, जिनकी कान्ति विद्युत्-सी है और जो अति सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए हैं, उन नित-नूतन लीलाविहारी, मेघश्याम नटनागर गोपालको देखकर कौन ऐसा चराचर है जो मुग्ध न हो जाय ? वे त्रिभङ्गिम-रूपमें जब वेणुवादन करने लगते हैं, उस समय गिरिराज गोवर्द्धन अचल न रहकर सचल बन जाता है, यमुनाकी जलधारा स्तब्ध हो जाती है, आकाशमें देवताओंके विमानोंकी गति अवरुद्ध हो जाती है, हरिणी दौड़कर हरिणके पास चली आती है। मयूर पूँछ उठाकर नाचने लगते हैं, गायें बच्चोंको दूध पिलाना भूलकर चित्रवत् खड़ी रह जाती हैं, वृक्षकी डालोंपर पक्षी मौनभावसे बैठे रह जाते हैं—ऐसा है उस योगमाया मुरलीका विमोहनकारी प्रभाव ! और उन प्रेमोन्मत्ता व्रजबालाओंका क्या कहना ! वे तो वेणुरव सुनते ही सारे गृहकार्य छोड़कर दौड़ पड़ती हैं उस ओर, जहाँ उनके मनरूपी शय्यापर शयन करनेवाले नटनागर उन्हें आह्वान कर रहे हैं। कोई रसोई बना रही है, कोई शिशुको स्तन्यपान करा रही है, कोई गाय दूह रही है, कोई शिशुको पालनेपर झुला रही है, कोई अन्तःपुरमें पतिसेवा कर रही है—ये सब काम ज्यों-के-त्यों पड़े रह गये। समस्त बाधाओंका अतिक्रमण करके तथा कुलमर्यादा, समाजनीतिके बन्धन एवं नारी-सुलभ लज्जाका त्याग करके जिनके साथ मिलनके लिये वे व्याकुल-प्राण हो उठी हैं, वे कौन हैं ? वे गोपियों, उनके पतियों एवं समस्त देहधारियोंके हृदयाकाशमें नियन्ताके रूपमें विराजनेवाले सर्वसाक्षी, सर्वाध्यक्ष स्वयं भगवान् हैं। केवल क्रीड़ाके लिये ही उन्होंने इहलोकमें नरतनु धारण किया है—

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम्।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक्॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३३ । ३६)

सच्चिदानन्द परम ब्रह्मका अंश होनेपर भी जीवात्मा-में आनन्दभाव तिरोहित है। इसीलिये उसका हृदय प्रेमका कंगाल बना रहता है; किंतु यह प्रेमभाव अन्तःसलिला फल्गुधाराकी तरह उसके अन्तस्तलमें प्रच्छन्न रहता है। इस महार्घ रत्नसे ईश्वरने किसीको वञ्चित नहीं किया है। प्रेमद्वारा मनुष्य आत्मविस्तार करता है, पर वह साथ ही रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है और ससीममें असीमके माधुर्यका अनुभव करता है। व्रजवासियोंने अपने अन्तःस्थकी प्रेमसलिला-को उद्वेलित करके ही चिरमुक्त परात्पर ब्रह्मको अपने प्रेमपाश-में आबद्ध कर लिया था, असीमको सीमाके रज्जुसे बाँधकर अपने मन, प्राणोंमें सदाके लिये बसा लिया था। नन्द, यशोदा, गोप-गोपियोंका यह परम सौभाग्य था कि उन्होंने प्रेम-रसामृत पान करके अपनेको कृतार्थ किया। श्रीशुकदेव-जी उनके इस सौभाग्यपर लिखते हैं—

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।
यशोदा वा महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः॥
नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत् तत् प्राप विमुक्तिदात्॥

(श्रीमद्भागवत १० । ८ । ४६, ९ । २०)

नन्द-यशोदाका परम सौभाग्य और गोपियोंको उसका प्रसाद बचा-खुचा यत्किञ्चित् मुमुक्षुजनोंको। ऐसी है उस दिव्य भगवत्प्रेमकी पुण्यमहिमा।

माँ ! हाथ पकड़ लो

(लेखक—श्रीहरिश्चन्द्रजी अष्ठाना 'प्रेम')

मैं छोटा था—बहुत छोटा—तब मैं कुछ नहीं जानता था, मेरी माँ जानती थी; सब माँ जानती थी। माँ ही सब जानती थी। मैं कुछ न करता था—माँ ही सब करती थी। मैं गोदमें पलता-खेलता और गोदमें ही सो जाता। माँ ही मेरी दुनिया थी, मैं 'माँ' का लाड़ला था, उसकी जिगरका एक टुकड़ा, उसीका था—केवल उसीका।

फिर समय चुपके-चुपके मुझसे घुलमिल गया। छाया-की तरह मेरे साथ हो लिया। अपनी सत्ता न रखते हुए भी मेरी सत्ताकी पुष्टि करने लगा। अनजानमें मुझे छलने लगा, धीरे-धीरे मुझे वह माँसे अलग करने लगा—धीरे-धीरे—पता भी न चला—और मैं गोदसे भूमिमें आ पड़ा।

अपने-आप खिसकने लगा—चलने लगा, तो गिरने भी लगा। गिरता-उठता-चलता—माँ देखती—मैं भी उसे देखता—वह मुसकुराती—मैं भी हँस देता। मैं हाथ बढ़ाता, वह भी हाथ बढ़ाती, पर पकड़ती नहीं। थक जाता, कातर दृष्टिसे माँको पुकारता, हाथ फैलाता, तो वह हाथ बढ़ाकर गोदमें भर लेती, वह भी प्रसन्न थी, मैं भी; मेरी माँ जो थी, मैं उसीका जो था।

खेल-ही-खेलमें दूर भागता, माँ पकड़नेको बढ़ती, मैं और भागता, माँ फिर पकड़ ही लेती—पकड़े जानेके लिये ही तो भागता था। खेल ही तो था। क्या पता था इस खेल-ही-खेलमें माँसे दूर हो जाऊँगा।

खिलौनोंसे खेलने लगा, औरोंका संग ढूँढ़ने लगा, कुछ अपनी 'कमाई' करने लगा, माँ दूर होती गयी—धीरे-धीरे संसार मेरेमें बहने लगा—ठंढ लगती, पर सहन करता। आदी हो चला, माँकी गोदकी गरमी विस्मृतिमें खो गयी। फिर भी समय-समयपर माँको देख लेता, खोज लेता और फिर खेलमें व्यस्त हो जाता। कुछ बहक चला, पर पूरा नहीं—मायाका नशा चढ़ चला पर हल्का-हल्का।

बाहर एक मेला लगा था—मायाका एक बाजार, एक नुमाइश, जहाँ हर चीज मिलती थी, सबका मूल्य था। मेलेमें आकर्षण था, सुन्दरता थी, रंग था, चञ्चलता थी। इन्द्रियोंमें एक हलचल मच गयी, एक तूफान उठ खड़ा हो गया—मेरे पैर उखड़ गये। माँसे भटका जान संसारने आ दबाया, मैं लड़खड़ाकर उसमें गिर ही पड़ा। जितना उठता-गिरता-चलता, उतना ही और अंदर धँसता जाता। उसमें एक रस था, सुख था। लगा जैसे जीवन यही है। मैं उसीमें लिप्त हो गया। यौवनकी खुमारीमें सारा संसार मस्तीसे चूर-भरपूर दीखता था। मैं भी उसीमें मस्त हो चला।

इधर-उधर विचरने लगा। आँखें फाड़-फाड़कर चारों ओर देखता। इतना बड़ा मेला हमारे लिये किसने लगाया। वाह ! फूल जैसे चलते-फिरते रूप जो मुसकरा दे तो खुशबू बखेर दें, सोने-चाँदी-हीरे-जवाहरातसे जगमगाते भवन और प्रकृति ! कितनी सुन्दर ! आँख उठ जाय तो पलक गिरने-का नाम न ले। आकाश ! नीलवर्ण—जिसमें चाँद-सूरज और सितारे जड़े हुए थे। मेला अपनी रोशनीमें जगमगा रहा था। क्या सामान थे। जो दिलको बहला लें, मनको मोह लें और बुद्धिको ठग लें। जी चाहता था सब बटोरके धर लें, सब मेरा हो जाय। मेलेमें धक्के लगते, ठोकर खाता, गिरता, उठता फिर चलता—रोता भी था और हँसता भी। जब रोता था तो माँकी याद करता, जब हँसता तो मेलेको देखता।

दिन ढलने लगा, धीरे-धीरे मेला निगाहोंसे उखड़ने लगा, जवानी फीकी पड़ी तो नशा भी उतरने लगा, बेहोशी-में होशकी करवटें लेने लगा। शामके धुँधलेपनमें माँके प्रतिबिम्बकी झलकियाँ उठने लगीं। कितनी विशाल हैं माँ ! सुबहका सूर्य तुम्हारी शान दबदबेको फैलाता है, दिनका सूर्य तुम्हारी चमकसे तपता है और यह संध्याका सूर्य तुम्हारी आभा है, तुम्हारा भूषण है। यह विशाल गगन तुम्हारी ओढ़नी है, चाँद तुम्हारे माथेकी बिन्दिया है और ये तारे ! तुम्हारी ओढ़नीमें जगमगाते सितारे हैं। कितनी महान् हो तुम माँ—कितनी बिराट् ! तुम्हारी शक्ति कितनी अपार है। एक कणमें इतनी शक्ति कि नगर-के-नगर राख हो जायँ, सूर्य और उससे सहस्रगुने नक्षत्र तुम्हारी चरण-धूलिमें लोटते हैं—तो कितनी शक्ति ! माँ ! तुम्हारी लीला अपरम्पार है। ब्रह्म ! सो तो छछिया भर छाछपर नाच दे—तुम्हीं तो ब्रह्मको प्रकाशमें लाती हो, नहीं तो, अज्ञातमें कहीं

गुमनाम पड़ा हो। तुम्हारी ही ज्योतिपुञ्जकी छिटकी हुई हम भी जगमगाती किरन हैं। पर जो गंदी गुब्बारसे धुँधली पड़ गयी हैं।

सूर्यास्तकी दिव्य प्रदर्शिनी निहारते-निहारते पलक झपकने लगे।

कहीं दूर नदी किनारे एक फकीर गा रहा था—

दो दिनका जगमें खेला, सब चलाचलीका मेला।
कोई चला गया है कोई जाते कोई खड़ा है गठरी बाँधे,
कोई खड़ा तयार अकेला, सब चलाचलीका मेला॥

मेरी आँख जैसे खुली, मैं उस ओर बढ़ चला। आवाजमें दर्द था, दिलकी रोशनीसे जगमगाता हुआ वह आँखोंसे अंधा एक फ़कीर था। मैंने कहा 'बाबा'—उसने आँखें उठायीं पर बोला नहीं। फिर गाया—

प्रेम लग्यो परमेश्वर सौं तब भूलि गयो सिगरो घर बारा।
ज्यों उन्मत्त फिरै जित ही तित नेक रही न सरीर सँभारा॥
स्वास-उसास उठै सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि छाकि परयौ रस पी मतवारा॥

फ़कीर था कि वैराग्य और अनुरागकी एक जीती-जागती तस्वीर!

मैं रो पड़ा, चिल्लाया—माँ! और किधरहीको भाग पड़ा। थक गया, पैर लड़खड़ाने लगे। माँ! तुम कैसे मिल जाओ। मैं निराश्रय, बे-सहारा हूँ, अकेला हूँ, संसार-सागरमें डूबा जा रहा हूँ, मुझे बचा लो, माँ! मेरा हाथ पकड़ लो।

एक मन्दिरसे घंटेकी आवाज आयी, धीरे-धीरे वहाँ पहुँचा, पाषाण-मूर्ति माँको देखा, वह मुस्करा दी, मैं रो दिया। आगे बढ़ा पकड़ लूँ, पर पुजारीने ठोकर मार दी 'मूर्ति अपवित्र करता है' वह स्तुति जो पढ़ रहा था।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
ॐ भवतापं विनाशिन्या आनन्दघनमूर्तये।
ज्ञानभक्तिप्रदायिन्यै मातस्तुभ्यं नमो नमः॥

मैं एक ओर बैठ गया। आँसू बहाता रहा और बड़बड़ाता रहा। माँ! तुम पतितपावनी हो, फिर तुम्हें कोई कैसे अपवित्र कर सकता है? तुम सबके पाप धोती हो, फिर तुम्हें कौन मैला करे। माँ! इन्हें ज्ञान दो। ये जानें! ये तुम्हारी कीर्तिमें बट्टा लगाते हैं। माँ खड़ी-खड़ी देखती रही, पर आसनसे उतरी नहीं। क्यों? यहाँ देवी जो बनी थी, माँ कहाँ थी? कैसे उतरे?

पुजारीकी आवाज सुनी 'प्रसाद ले।' भूखा था हाथ फैला दिया। एक टुकड़ा उसमें आ गिरा, मुट्ठी बंद की। फिर बैठा रहा। किसीने कहा 'अब जा मन्दिर बंद हो गया।' मैंने कहा—'अभी खुलेगा' और बैठा रहा। पुजारीने कहा 'अब कल खुलेगा। मन्दिर बंद हो गया। माँ शयनमें गयी। जा' और धीरेसे बाहर ठेल दिया। मैं खिलखिलाकर चिल्ला पड़ा। माँ! तुम जगज्जननी, जगद्धात्री और यह तुम्हें कोठरीमें बंद कर दें। और जोरसे हँसा जब यह चाहें तब द्वार खुले—माँ! इन्हें वह आँख दो जो यह देख लें—बेटा बनना तो आया नहीं बाप बनने लगे—माँकी गोदमें तो खेले नहीं—माँको गोदमें सुलाने लगे। वाह रे दुनिया—माँ! तुम्हारी लीला विलक्षण है। अज्ञानी ज्ञानीका दावा करें और ज्ञानी तो मूर्ख हैं ही, और रो पड़ा। किसीने कहा 'पागल है।' द्वार बंद हो गये, माँ अंदर रह गयी। मैं बाहर हो गया। कौन सम्राट ऐसा है जो हमें माँके राज्यसे बाहर कर दे। माँ स्वयं ही नहीं कर सकती—पर ये पुजारी निश्चय ही कर सकते हैं।

मुट्ठी बाँधे निकल पड़ा। भूख लगी थी कहा—माँ! भूख लगी है, किसी भारी हाथने मेरा कंधा पकड़ा—कहा 'चलो खा लो' बड़े-बड़े अक्षरोंमें बाहर लिखा था 'छेत्तर स्वामी अमुकानन्द' मेरे नासमझ हमदर्दने कहा। 'यहाँ खाना सबको बँटता है, जाओ खा लो।' मूढ़वत् मैंने उसकी ओर देखा—एकटक उन अक्षरोंको देखा, धीरेसे बोला 'छेत्तर

स्वामी अमुकानन्द ?' एक साँस ली ! 'माँका नहीं है' और आगे बढ़ चला। ऐसे ही छेत्तर कई मिले—कोई किसी स्वामीका कोई किसीका। माँ अन्नपूर्णाका हो तो खाऊँ। अंदर बढ़नेसे पहले ही पैर ठिठक जाते—हृदय चीख उठता 'ये नास्तिक हैं—माँकी चीजको अपनी बताते हैं—इनके नामका खाया पाप है—माँ अन्नपूर्णे ! तुम छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़ेका पालन-पोषण करती हो, पर कहीं तुम्हारा नाम नहीं मिला और यहाँ छटाँकभर अन्न—तुम्हारा दिया ये वितरण करते हैं और हर दानेपर अपनी मुहर लगा देते हैं—फिर भी विश्वासकी आहें भरते हैं, आस्तिक होनेका दावा करते हैं। तुम्हारा हृदय कितना विशाल है माँ ! तुम सब सहन करती हो। तुम्हारे बच्चे जो हैं !

थका-माँदा—कहाँ विश्राम लूँ ? आश्रममें ! किसके ? आश्रम तो कई मिले। दो फूँसकी झोपड़ी रखकर कोई कहता यह आश्रम है स्वामी अमुकानन्दका। दो ईंटोंका ढेर जमाकर कोई अक्षरोंमें चिल्लाता यह आश्रम है स्वामी अमुकानन्दका। बस, ऐसे ही आश्रमपर आश्रम थे, जिनमें चल-अचल मूर्तियाँ भरी पड़ी थीं। वैराग्यका बुर्का था। संसार अंदरसे झाँकता था। माँके नामका आश्रम कोई नहीं। सोचा, इतना बड़ा विशाल भवन—दिशाएँ भी जिसे घेर न सकीं—माँने बनाया, पर कहीं अपना नाम न दिया—आजतक लोग यही ढूँढ़ते हैं किसने बनाया। पर माँसे बिछुड़े हुए उसके बेटे उसकी सम्पत्तिपर अपनी छाप लगाये बैठे हैं। शायद अपना नाम उज्ज्वल करते हैं। संसारी अपना संसार खोलकर रखता है और ये विरक्त अपना संसार ढाँपकर रखते हैं। पर हैं सब माँहीके बच्चे, कुछ भूले हुए—कुछ राहकी ओर, कुछ राहपर।

एक घने वृक्षके नीचे, जहाँ किसी नामकी छाप न थी जहाँ छाया सबपर समान पड़ती थी—मैं भी बैठ गया। ऊपर पक्षी थे, डालें फलोंसे झुकी थीं। रोशनी छन-छनकर गिरती थी। आँख लग गयी—टपसे कुछ गिरा, आँखें खुलीं, कोई फल था खाया। जिससे भूख भी मिटी और प्यास भी। शरीरमें जान पड़ी—फिर तेजीसे रातके झिलमिलाते तारोंकी रोशनीमें दौड़ने लगा। राह न देखी थी, न पहचानी। मेलेमें था पर मेलेसे अलग माँके पास था, बहुत दूर था। पैर उठते थे, गिरते थे और फिर उठते थे। बस, यों ही दूरी कम तो होती थी, पर ज्यों-की-त्यों बनी थी—आवाज देता 'माँ' और 'हाँ' कर लौटती। मैं उसी ओर भागता, दम फूल गया—पैर लड़खड़ाने लगे। किसीने धीरेसे कंधेपर हाथ रक्खा कहा 'सुनो। तुम माँको ढूँढ़ रहे हो चलो हम मिला दें।' न जाने किन आँखोंसे मैंने उसे देखा और उसके साथ हो लिया।

वह घुसा एक भवनमें, लाल वस्त्रपर सुनहरे अक्षरोंमें लिखा था। महन्त श्री १००८……मूढ़वत् उसे देखा और चलता रहा। एक सुसज्जित कमरेमें एक महात्मा बैठे थे—लोग दर्शन करके निकल रहे थे—झलकता हुआ वस्त्र था गेरुआ, शान्त मुद्रा कुछ गम्भीर थे। मुझसे कहा 'बैठो।' मैं बैठ गया नीचे। महाशय जो मुझे यहाँ लाये थे कुछ कहकर चले गये। महात्मा बोले—'बेटे ! माँ ढूँढ़ते हो कहाँ ? वह तो सर्वव्यापी है—सर्वज्ञ है, निर्विकल्प-निर्विकार-निराकार है। उसे अपने हृदयमें देखो। मृगकी नाभिमें कस्तूरी होते हुए भी वह इधर-उधर खुशबूके पीछे भागता है अज्ञानवश। कोई बतानेवाला जो नहीं कि उसकी नाभिमें कस्तूरी है जहाँसे वह सुगन्ध आ रही है। निराकारका साकार तो केवल कल्पना ही होगी। तो कुछ ध्यान करो, कुछ साधना करो—हम तुम्हें माँ दिखलायेंगे—सबमें सब जगह'……तपती हुई रेतीमें पानीकी बूँद जैसे 'छन्न' करके रह जाय, वैसे ही माँके वियोगकी भूमिपर ये ज्ञानकी बूँदें पड़ीं—बेचैन हो उठा कहा 'महाराज ! मैं माँका था, माँ मेरी थी—मेलेमें भूल गया। मैं उसे जानता हूँ। वह मेरे साथ थी। मैं ढूँढ़ लूँगा—मेरी माँ किसी साधनासे नहीं मिलती। बस, प्यारसे आती है। मेरा प्यार संसारके बोझसे कहीं दब गया था, नमस्कार।' और उठ खड़ा हुआ। आसनसे महात्मा उतर पड़े—मेरी आँखोंमें अपनी आँखें डालीं। जैसे ज्ञान उँड़ेल दिया जो मेरी डबडबायी आँखोंके आँसुओंमें बह गया। कुछ भीगी आवाजमें बोले 'बेटे ठहरो ! तेरी आवाजमें किसीकी आवाज मैं भी सुन रहा हूँ—तू मेलेमें खो गया। मैं धोखेमें खो गया। संसारसे भागा, पर कहाँ ? संसार सिमिटकर पास चारों ओर हो गया। ये पड़े, यह आश्रम, ये चेले, यह मान-प्रतिष्ठा—यह वैभव सब क्या है—क्यों ? बन्धन हैं। मायाका आवरण, इन्हें फेंको मुझे एकान्त चाहिये। यह अकेला नहीं रहने देते।' बस, कपड़े जल्दी-जल्दी उतार फेंके, एक बिछी

चादर लपेट ली। बोले 'नमस्कार तुम्हें—तुम यौवनकालमें अन्धेके हाथकी रोशनी थे; और बाहर हो गये, कितने ही शिष्य पीछे दौड़े। पर उस महात्माने उनको भी नमस्कार कर लिया। उस महन्तश्री १००८...' को भी नमस्कार किया—द्रुतगतिसे मुझे घसीटते हुए आश्रमसे दूर हो गये। अब जब मेलेमें थे, तो अकेले थे—जब अकेले थे तो मेला साथ था। मेरा हाथ छूट गया और हवाकी तरह मेलेमें घुसे और कहीं खो गये, मेरी आँखसे ओझल हो गये। लगता, कहीं बाढ़ आयी बाँध टूट गया। ज्ञान भीग गया और वे उस बाढ़में बह गये।

मैं अपनी राहपर लग लिया—ज्यों-ज्यों व्याकुलता बढ़ती, लगता हर हवाका झोंका कहता 'अब तू पास आ गया है' बस, आशाकी डोर पकड़े बढ़ता ही गया।

दूर एक भीड़ जमा थी। लोग जय बोल रहे थे रामकी, कृष्णकी, सीताकी, राधाकी, शंकरकी, पवनसुत हनूमान्‌की और संतकी। मैं उधर ही खिंच गया। मञ्चपर एक कथावाचक थे—पासमें स्वरूप बैठे थे। राम और सीता, साधारण नहीं। कुछ दिव्य छटा झलक रही थी। मैं भी पीछे बैठ गया, पास ही बैठा था एक वृद्ध, पर तेज था उसके चेहरेपर। जो स्वरूपको देखता और आँखें पोंछ लेता, कथा भी सुन रहा था और आँसू भी बहा रहा था। जब कथावाचक कहता—तुलसीका यह ग्रन्थ असीम सागर है। शब्दयोजना सराहनीय विलक्षण है; काव्य नहीं, यह अमृतवाणी है। भाव दिव्य, यहाँ प्रत्येक शब्द जैसे हीरे-जवाहरात पिरोये गये हैं। कोई शब्द क्यों लिखा गया, कहाँ-कहाँ लिखा गया, किन-किन अर्थमें आया तो कथावाचक विभोर हो जाता। कथाकी डोर छूट जाती और मानस-मर्मज्ञ, कलिकल्पना अवतार भक्त-शिरोमणि प्रातःस्मरणीय तुलसीको श्रद्धाञ्जलि देने लगता। और मेरे पास बैठा वृद्ध सिसक-सिसककर रोने लगता। कथा समाप्त हुई, आरती हुई। प्रसाद बँटा सब चले गये—रहा वह वृद्ध और उसके पास मैं।

देखा, स्वरूपके राम आये, पर कहाँसे ? वे तो चले गये थे। मैंने स्वयं जाते देखा था फिर ये कहाँसे आये एकदम अचानक। स्वरूप बोले—'तुलसी उठो' क्या यह वृद्ध तुलसी हैं ! मैं अपनेको टटोलने लगा। आँखोंको मसलने लगा। ये तुलसी, ये राम ! सब क्या है ? वृद्धके आँसू टप-टपकर उनके चरणोंपर गिरते, वह सिसक-सिसककर रोता बोला 'प्रभु ! मैंने बड़ा अपराध किया। पाप जो क्षणभरको भी आपके गुणगानसे विमुख कर दे। वह अपराधी नहीं तो क्या वेद-उपनिषद्‌में पूर्वजोंने नाम नहीं डाला और मैं मूर्ख अधम आपका नाम लेता रहा और मैंने अपना नाम भी डाल दिया। लोगोंकी दृष्टि आपसे हटकर कभी-कभी मेरी ओर भी फिर जाती है। वे आपसे विलग हो जाते हैं। मैंने पाप किया है। मैं प्रायश्चित्त करूँगा। प्रभु ! कुछ उपाय बता दो। मुझे क्षमा करो' और रोते ही रहे बालकोंकी भाँति। विशाल भुजाओंने उन्हें उठाया, मुसकराते हुए अमृतवर्षा की—बोले 'तुलसी ! तुम व्यर्थ चिन्ता करते हो, हम तुम्हारा नाम स्वयं सुनना चाहते हैं, तुम हमारे जो हो, तुम्हारी कीर्ति हमारी ही कीर्ति है, हमें प्रिय है।' रुँधे गलेसे वृद्ध बोले—'दयालु प्रभु !' और चरणोंमें लोट गये। रामने उठाकर लिपटा लिया और मुसकरा दिया। मुझसे कहा 'तू माँको ढूँढ़ता है ? देख वह है माँ तेरी' और सामने इशारा कर दिया। सच—मैंने देखा, माँ खड़ी मुसकरा रही थी पास ही। मैं होश खो बैठा—कोई बाँध टूट गया। आवाज बहक गयी, दौड़कर घुटनोंसे लिपट गया। माँने सिरपर हाथ रक्खा। हँस दी। कहा 'साथ ही तो हूँ।' मैं रोया, माँ ! बहुत भटककर थक गया हूँ। मुझे भीड़में—मेलेमें मत जाने दो—मैं कहीं फिर न भूल जाऊँ। मेरा हाथ पकड़ लो' हाथ ऊपर हो गया, गिड़-गिड़ाकर मैंने फिर कहा—'माँ ! हाथ पकड़ लो।' किसीके हाथने मेरा हाथ थाम लिया—मैंने सिर उठाकर देखा तो लगा, जैसे माँ मेरी राम थी। फिर सामने देखा क्या राम ही मेरी माँ थी ! दोनोंके होठोंपर मुसकराहट थी। दोनों ही अदल-बदल जाते। मैं चक्करमें था, होंगे दोनों एक ही होंगे। पर मैं माँकी गोदमें खेला हूँ—मुझे माँ ही चाहिये, माँका हाथ।

अब भी कभी-कभी जाग्रत्‌में, स्वप्नमें चिल्ला पड़ता हूँ 'माँ ! हाथ पकड़ लो' और हाथ अपने-आप ऊपर उठ जाते हैं, किसीका स्पर्श लगता है, पर अदृश्य !

वट-सावित्री अमावस्या

(लेखक—श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)

जब सावित्रीने सत्यवान्‌को यम-पाशसे छुड़ाया था !

सावित्री-सत्यवान्‌की कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि सावित्रीने अपने बुद्धिकौशल और पाण्डित्यसे यमराजके पाशसे अपने पति सत्यवान्‌की जीवात्माको वापस ले लिया था। इन गुणोंके अतिरिक्त सावित्री आदर्श पतिव्रता भी थी और अपनी इन सब विशेषताओंके कारण ही वह अमर हुई और सत्यवान्‌ने भी अमरत्व प्राप्त किया। कहा जाता है कि इस घटनाके चार सौ वर्षों बादतक उक्त दम्पती इस लोकमें रहे और तत्पश्चात् उनको वैकुण्ठलाभ हुआ, वे स्वर्गवासी हुए। पतिव्रता-शिरोमणि सावित्रीके परम तप और तेजसे उसके श्वशुर महाराज अश्वपतिने नेत्रवान् होकर राज्यसुख भोगा। ऐसी आदर्श पतिव्रता नारियोंपर हमें गर्व हो, यह स्वाभाविक है।

सावित्री-सत्यवान्‌की कथासे ज्येष्ठ मासकी अमावस्याका अभिन्न सम्बन्ध है। इसी तिथिको सावित्रीने सत्यवान्‌को यमपाशसे छुड़ाया था। इसी कारण उक्त तिथि वट-सावित्री अमावस्याके रूपमें प्रसिद्ध है। नारी-समाज, विशेषतः सधवा-समाजमें इस व्रतका विशेष महत्त्व माना जाता है।

वट-सावित्री-व्रत ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीसे आरम्भ होकर अमावस्याको पूर्ण होता है। दूसरे शब्दोंमें—यह त्रिदिवसीय पर्व है। त्रयोदशीको प्रातःकाल सधवा स्त्रियाँ स्वच्छ दातूनसे दन्त-मुख-शुद्धिकर उसी दिन मध्याह्नके पश्चात् नदी या सरोवर आदिके शुद्ध जलमें तिल तथा आँवलेके चूर्णसे केशशुद्धि एवं स्नान करती हैं। तदनन्तर, जलसे वटवृक्षके मूल भागका सिंचनकर सावित्री-सत्यवान्‌की मिट्टी अथवा स्वर्णमयी मूर्तिकी हल्दी, गन्ध, अक्षत, पुष्प, ताम्बूल, कुङ्कुम तथा सिन्दूरसे वे पूजा करती हैं। वटवृक्षपर प्रदक्षिणापूर्वक एक सौ आठ बार सूत लपेटते हुए यह मन्त्र पढ़ा जाता है—

जगत्पूज्ये जगन्मातः सावित्रि पतिदैवते।
पत्या सहावियोगं मे वटस्थे कुरुते मम॥

प्राचीन कालमें इस दिन पति-पूजा होती थी; किंतु शनैः-शनैः वटवृक्षका पूजन होने लगा। वट वा बरगदका वृक्ष परम पवित्र माना जाता है और वट-सावित्री अमावस्यासे ही प्रावृडारम्भ होता है। पुनः वर्षाकालपर्यन्त कोई जंगलोंमें नहीं जाता। दूसरे शब्दोंमें—वृक्षादिकी रक्षा की जाती है, उनको नष्ट नहीं किया जाता; अपितु वृक्ष बढ़ते, पनपते और जन्म लेते हैं। वट-वृक्षके मूलमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु, अग्र भागमें शिव तथा समग्रमें सावित्रीका निवास माना जाता है। अतः वटवृक्ष-पूजनका महत्त्व स्पष्ट है। कहा गया है—

वटमूले स्थितो ब्रह्मा वटमध्ये जनार्दनः।
वटाग्रे तु शिवो देवो सावित्री वटसंश्रिता॥

हाँ तो, वट-सावित्रीको नमस्कारकर, पूजकर स्त्रियाँ घर लौटती हैं और दीवारपर चन्दन तथा हल्दीसे वटवृक्षका चित्र बनाकर पुनः उसकी पूजा करती हैं। अमावस्याको रात्रिमें तारा देखकर अर्घ्य प्रदान करने तथा कथा श्रवण करनेके अनन्तर पूर्वोक्त मूर्ति वा प्रतिमा ब्राह्मणको दान दे दी जाती है। दूसरे दिन—प्रतिपदाको व्रतोद्यापन होता है। इस दिन चन्द्रार्घ्य देकर सधवा तथा सावित्रीका पूजन होता है। तदनन्तर ब्राह्मण और ब्राह्मणीको भोजन करानेके बाद, स्त्रियाँ स्वयं भोजन ग्रहण करती हैं। बाँस और बालुकाके पात्र बनवाकर उनमें सात प्रकारके अनाज भरकर तथा उन पात्रोंको वस्त्रोंसे ढककर ब्राह्मणोंको दान दिया जाता है। एक पात्र-पर ब्रह्मासहित सावित्री (सरस्वती) की मूर्ति तथा दूसरे-पर सत्यवान्-सहित सावित्रीकी रजतमयी मूर्ति रक्खी जाती है। बाँसकी एक टोकरी और चाँदीकी एक कुल्हाड़ी रखने-की प्रथा भी है। ऋतुफलोंका दान तथा हल्दीसे रँगे हुए कण्ठसूत्रोंको देकर सौभाग्यवतियोंका पूजन करने तथा प्रतिदिन सावित्री-सत्यवान्‌की कथा श्रवण करनेका विधान भी है। प्रतिदिनसे आशय ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीसे अमावस्या-पर्यन्तसे है। सौभाग्यवतियाँ अपने पति तथा पुत्रादिकी आरोग्यता एवं जन्म-जन्मान्तरोंतक सौभाग्य-लाभके निमित्त यह व्रत-संकल्प करती हैं। ऋतुकाल, प्रसूतावस्था वा अस्वस्थताकी स्थितिमें ब्राह्मण वा ब्राह्मणीके द्वारा भी यह व्रत यथाविधि कराया जाता है।

सावित्रीके कथनानुसार इस व्रतको करनेसे स्त्रियाँ पति-पुत्रादिसहित सदैव आनन्द करती हैं।

उत्तरप्रदेशके किसी-किसी भागमें वट-सावित्री-व्रतका विशेष प्रचार है। राजस्थानमें इसका उतना प्रचार नहीं है। महाराष्ट्रमें इसका प्रचार है—स्मार्त-सम्प्रदायके दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंमें। वहाँ इस दिन सौभाग्यवतियाँ उपवास कर वट-वृक्षका पूजन करती हैं। ब्राह्मणोंके अतिरिक्त, अन्य जातिकी स्त्रियाँ भी यह व्रत करती हैं। बंगालमें वट-सावित्री-पूजनकी प्रथा अन्य प्रदेशोंसे कुछ भिन्न है। वहाँकी स्त्रियाँ वट-सावित्रीके स्थानपर अपने पतिका पूजन करती हैं। वहाँ, पतिके शरीरमें उबटन लगाकर तैलाभ्यङ्ग-स्नान करानेकी प्रथा है। तदनन्तर, वस्त्र पहनाकर गलेमें पुष्पहार पहनाये जाते हैं। हाथमें पुष्पोंका गुच्छा वा तुर्रा देनेकी चाल भी है। पति-पूजनके अनन्तर वहाँ पुष्प, फल तथा वटवृक्ष-की डालीसे यमपूजन किया जाता है। वहाँ यह व्रत 'सावित्री-व्रत'के नामसे प्रसिद्ध है। कहीं-कहीं सावित्रीकी कथा भी सुनी जाती है और वटपत्रके बने दोनोंमें ऋतुफल तथा सौभाग्यसूचक सामग्री भरकर वे निकटवर्त्ती सौभाग्यवतियों-के पास बायन वा भेंटस्वरूप भेजती हैं। छोटे-छोटे ग्रामोंमें स्त्रियाँ किसी वट-वृक्षके तले बैठकर पूजन करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रायः सभी प्रदेशोंकी सधवाएँ वा सौभाग्यवतियाँ यह व्रत अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करती हैं।

आदमीका बड़प्पन इस प्रकार नापा जाय ?

(लेखक—डॉक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

मनुष्यके मूल्याङ्कनकी सच्ची कसौटी

सेठ लक्ष्मीचंदको अपने धनका बड़ा अभिमान है। उनसे बातचीत होने लगी तो बोले, 'आदमी वह बड़ा, जिसके पास ढेर-के-ढेर रुपये हों, तिजोरियाँ आभूषणोंसे भरी हों, खूब जमीन-जायदाद हो, बड़ी फर्मोंमें शेयर हों, व्यापार धड़ाधड़ रुपया बरसाता हो।'

मैं सोचता रहा कि शायद सेठ लक्ष्मीचंदका दृष्टि-कोण ही ठीक हो, पर उस दिन मिल गये बाँके पहलवान। हमने पूछा, 'कहिये, आदमीका बड़प्पन किस प्रकार नापा जाय ?'

वे तपाकसे बोले, 'कितना आसान सवाल है। अरे भाई, जिसके शरीरमें ताकत है, वही बड़ा है। मनुष्यकी सबसे बड़ी इच्छा है कि वह शक्तिशाली बने। माँ अपने बेटेको मजबूत चाहती है, पत्नी पतिको उसकी ताकतसे बड़ा मानती है। बलवान् बनो। लो उस्तादका गंडा बाँधो। अकल, जाति, बिरादरी, गुण-कर्म कुछ भी कामके नहीं हैं। बड़ा बनना है तो बस मजबूत बनो, मुहल्ले-मुहल्लेमें स्कूल-कालेजोंकी जगह अखाड़े चलाओ। लाठी, बल्लम, लेजिम, डंबल, मुग्दर, लोहेके गोले उठाना, लाठी चलाना, घुमाना, फेंकना और मारना सीखो।'

पहलवानके दृष्टिकोणपर हम बहुत विचार कर ही रहे थे कि सिनेमाके गीत गुनगुनाते, बनाव-श्रृङ्गार किये अभिनेता मुकुल मिल गये। मुकुलजीका सिनेमाके जगत्‌में बड़ी लोकप्रियता है। उनसे भी हमने अपना सवाल दुहराया।

अभिनेता बोले, 'सुन्दर बनो, अरे यार, बड़ा बनना है, दुनियामें कुछ नाम कमाना है तो खूबसूरत बनो। मुझे देखो, रोज आइनेके सामने घंटों बैठ साज-सँवारकर फैशन बना पूरे बनाव-श्रृङ्गारसे पर्देपर आता हूँ, सदा सिनेमाके रंगीन मस्ताने गीत गाता हूँ फिर मुझमें सुन्दरता क्यों न आयेगी ? सुन्दरता ही आदमीके बड़प्पनकी कसौटी हो सकती है।'

मेरा मन तो भानमतीका पिटारा बन गया। एक कहता है, आदमी अपने रुपयेसे बड़ा बनता है, दूसरा शक्तिको महानताकी निशानी मानता है, तो तीसरा सौन्दर्य-यौवन और बाह्य आकर्षणको मनुष्यके मूल्याङ्कन-की कसौटी मानता है।

आखिर बड़ा कौन है ? हम किसे महान् मानें और

किस दिशामें बढ़ें ? वह क्या आदर्श हो सकते हैं, जिनकी आराधनासे समाज और मानवताकी उत्तरोत्तर उन्नति और विकास हो सकता है ?

मनुष्यका सही मूल्याङ्कन—एक बड़ी समस्या

आदिकालसे हमारे विचारक मनुष्यके बड़प्पनकी कसौटी तलाश करते रहे हैं। कोई धन, कोई बल, कोई सौन्दर्यको मनुष्यकी श्रेष्ठताकी निशानी मानते रहे हैं।

भारतीय चिन्तकों, विचारकों और तत्त्ववेत्ताओंने इस प्रश्नपर बहुत बारीकीसे सोचा है। लघुता और महानताके प्रश्नपर बहुत कुछ कहा है। महाभारत, भागवत, पुराण, गीता, उपनिषद्, वेद इत्यादि ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर ऐसे बहुमूल्य वाक्य भरे पड़े हैं, जिनमें मनुष्यकी श्रेष्ठताकी कसौटी स्पष्ट की गयी है।

इन सब ग्रन्थोंका निचोड़ यह है कि मनुष्यकी सूरत-शक्ल, रुपया-पैसा, अधिकार-प्रभाव इत्यादि कोई भी बड़प्पनकी निशानी नहीं है। रुपया तो सांसारिक दृष्टिसे चतुर व्यक्तियों, व्यापारियों, पूँजीपतियों, कालाबाजार करने तथा रिश्वत लेनेवालों, चोर-डाकुओं, वेश्याओंके पास भी बहुत होता है। जमीन-जायदाद, मकान-मोटर, भरी हुई तिजोरियाँ, हुंडी, प्रापर्टी संसारमें असंख्य मनुष्योंके पास अनाप-शनाप भरे पड़े हैं। सट्टा-फाटका, व्याज, कालाबाजार और रिश्वतसे आजका कंगाल भी कलका साहूकार बन जाता है। इसलिये धन कभी भी बड़प्पनकी कसौटी नहीं रहा है।

रूप-यौवन-सौन्दर्य कितने दिन रुकते हैं ? किसके रुके हैं ? इतिहासके पृष्ठोंमें एक-से-एक सुन्दर स्त्री-पुरुषोंका उल्लेख मिलता है पर मौतके एक साधारणसे झटकेने उनका सौन्दर्य नष्ट कर दिया। बुढ़ापा वह बला है, जो खूबसूरतसे खूबसूरत इन्सानको कुरूपतामें बदल देता है।

और शारीरिक शक्ति ? मनुष्यकी ताकत हमेशा घटती-बढ़ती रहती है। भीम तथा रुस्तम-जैसे बलशाली महान् पुरुष भी न रहे ! तो हमारी क्या गिनती है ! पहलवानलोग चार-चार सेर दूध, पाव-पावभर घी-मक्खन हजम कर जाते हैं, कसरत करनेवाले चार-चार घंटे डंड-बैठक, मुग्दर, सूर्यनमस्कार, कुश्ती लड़ते रहते हैं। शक्ति-कामना एक मृगतृष्णा ही है। शारीरिक दृष्टिसे मोटे-तगड़े आदमियोंको कौन बड़ा कह सकता है ? इसी प्रकार उच्च कुल, पुराने प्रसिद्ध परिवार, पहुँच, अधिकार, शिफारिश, मिलीभगत इत्यादि सब तुच्छ तरीकोंसे कोई बड़ा नहीं हो सकता। कलक्टरका लड़का कलक्टर या चपरासीका लड़का चपरासी होना जरूरी नहीं है। इसी प्रकार किसी उच्च या धनी वंशमें उत्पन्न होनेवाले सभी व्यक्ति अपने पूर्वजोंके समान ही अच्छे और श्रेष्ठ हों, यह कोई आवश्यक नहीं है।

लघुता और महानताको यों नापा जाय

हिंदू-धर्म और भारतीय संस्कृति जिस तत्त्वको सर्वाधिक महत्ता देती रही है, वह शील, गुण, योग्यता, आचार-विचार और लोकोपकारका धन है। हमारे यहाँ ऐसे अनेक विचारक, कवि, विद्वान्, समाजसेवी, तत्त्वज्ञानी हुए हैं, जिनके पास एक पैसा भी नहीं था या जिनके जेब ही नहीं थी, फिर भी वे बड़े भारी धनवान् थे। ज्ञानकी समृद्धि सदा उनके पास थी।

ये गुणी व्यक्ति इतने बड़े धनवान् हैं कि उनकी समता समाजके बड़े-बड़े पूँजीपति, आलीशान इमारतोंमें निवास करनेवाले कदापि नहीं कर सकते। जिनके बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी इमारतें, जमीनें-जायदादें, बाह्य टीपटाप, विपुल ऐश्वर्य, हाथी, मोटर इत्यादि कुछ भी नहीं थे, पर वे आज भी इतने महान् हैं कि उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

धनवान् वास्तवमें कौन है ?

लार्ड कालिंगवुडका उत्तर सुन लीजिये, 'दूसरोंको

सोना-चाँदीके टुकड़ोंपर मरने दो; मैं तो बिना पैसेके अमीर हूँ; क्योंकि मैं जो थोड़ा-सा धन कमाता हूँ, नेकी और ईमानदारीसे कमाता हूँ।'

और लीजिये सिसरो क्या कह रहे हैं, 'मेरे पास थोड़ेसे ईमानदारीके साथ कमाये हुए पैसे हैं; परंतु ये मुझे करोड़पतियोंसे भी अधिक आनन्द देते हैं।'

जिसका हृदय उदार है, जन-जनके कल्याणके लिये जो सदैव तैयार है, जिसका मन पवित्र है, जिसके पास योग्यता और अच्छे गुण-कर्म हैं, यथार्थमें वही धनवान् है, वही महान है। पूजनीय है, वन्दनीय है।

महर्षि दधीचि, महामुनि वशिष्ठ, महाकवि वेदव्यास, वाल्मीकि, महाकवि चैतन्यमहाप्रभु, तुलसीदासजी, भक्त-प्रवर सूरदास, गुरु रामदास, महान् विचारक कबीर इत्यादि विद्वान् बिना पैसेके अमीर थे।

रुपये-पैसे जैसे सांसारिक वैभवोंवाली क्षणिक अमीरीकी शान गाँठनेवाले असंख्य आदमी इस दुनियामें उपजे और समा गये हैं, किंतु उपर्युक्त संत विचारक और कवि अपने अमर ग्रन्थोंके माध्यमसे आज भी जीवित हैं। ये बिना पैसेके बड़े अमीर थे।

ये विद्वान् बताया करते थे कि मनुष्यका सब आवश्यक भोजन मुखद्वारा ही अंदर नहीं जाता और न जीवनको समुन्नत श्रेष्ठ और अमर बनानेवाली सब वस्तुएँ पैसेसे खरीदी जा सकती हैं।

ईश्वरने हमारी जीवनरूपी पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठपर अमूल्य रहस्योंको अङ्कित कर रक्खा है। यदि हम शील, गुण और कर्मोंकी श्रेष्ठताको पहचान लें, तो जीवनको प्रकाशपूर्ण बना सकते हैं।

तुलसीदासजीको कभी आलीशान महल न मिला था। सूरदासजी शायद आयुपर्यन्त कुटियामें निवास करते रहे होंगे, महात्मा कबीर कच्चे मकानमें कपड़ा बुनते रहे, गुरु नानकदेवजी सदा सादगीका जीवन बिताते रहे और अपने अमूल्य विचार फैलाते रहे, स्वामी दयानन्दजीको कभी जीवनका विलास न मिला। ये महान् आत्माएँ झोंपड़ियोंमें रहकर संसारमें अपने गुण, सत्कर्म और सद्विचारका प्रकाश फैलाते रहे। एक विशाल हृदय और उच्च आत्मावाला विद्वान् झोंपड़ीमें रहकर भी अपनी विद्या और बुद्धिसे रत्नोंकी जगमगाहट पैदा करेगा।

जो व्यक्ति लोकजीवनके सुधार, समाज-सेवा और परोपकारमें प्रवृत्त है, वह अपने गुण-कर्मकी उच्चताके कारण इस लोकमें भी धनी है तथा परलोकमें भी अमीर है, भले ही उसके पास सोना-चाँदीका अभाव हो। यदि आप विनयशील, प्रेमी, निःस्वार्थ और पवित्र हैं तो विश्वास कीजिये आप अनन्त धनके स्वामी हैं।

जिसके पास पैसा नहीं है, वह गरीब कहा जाता है, परंतु जिसके पास केवल पैसामात्र है, अच्छे गुण, शुभकर्म, सद्बुद्धि, ऊँची योग्यता, दृढ़ चरित्र और सदाचार नहीं है, वह उससे भी अधिक कंगाल है।

क्या आप सद्बुद्धि और सद्गुणोंको धन नहीं मानते ?

अष्टावक्र आठ जगहसे टेढ़े थे और धनहीन थे, पर जब महाराज जनककी सभामें जाकर उन्होंने अपनी विद्वत्ता और उच्च गुणोंका परिचय दिया, तो गुणोंसे प्रभावित होकर राजा उनका शिष्य हो गया।

गुरु द्रोणाचार्य जब धृतराष्ट्रके शाही दरबारमें पहुँचे, तो उनके शरीरपर ठीक तरहके वस्त्रतक न थे। कोई कह नहीं सकता था कि यह व्यक्ति इतना गुणी हो सकता है; लेकिन जब राजाको उनकी विद्या-बुद्धि

और कुशलताका पता चला, तो उन्हें राजकुमारोंके राजगुरुका सम्मानपूर्ण पद मिला था ।

महात्मा डायोनीज़के आध्यात्मिक वैभवसे दिग्विजयी सिकन्दर बड़ा प्रभावित हुआ । उसने मन-ही-मन अनुभव किया कि सैनिक सफलता क्षणिक है । उसने बड़प्पन प्राप्त करनेके लिये जो रक्तपात, हिंसा, दमन और बर्बरता की है, वह व्यर्थ रही है । बड़प्पन कहीं है, तो वह महात्मा डायोनीजके ही पास है । वह एक दिन उनके पास गया और हाथ जोड़कर आत्म-समर्पण करते हुए बोला—

'महात्मन् ! मैं आपको बड़े श्रद्धाभावसे देखता हूँ । श्रद्धाप्रसूनके रूपमें आपको कोई भेंट प्रस्तुत करना चाहता हूँ । कृपया बतलाइये, गुरुदक्षिणाके रूपमें कौन-सी चीज हाजिर करूँ ?'

डायोनीज कुछ देर सोचते रहे । अपनेको महान् समझनेवाला सिकन्दर उनके सामने ऐसे खड़ा था, जैसे सिंहके सामने बकरी ।

महात्मा बोले, 'सिकन्दर ! हिंसा, हत्या, कत्ल, रक्तपात, आतङ्क आदि पाशविक तरीकोंसे कोई बड़ा नहीं होता । महानता मनुष्यकी विद्वत्ता, शील, गुण और अच्छे कर्मोंसे ही नापी जाती है । तूने अपना सारा जीवन पाप ही इकट्ठा किया है । अच्छा, मेरी धूप मत रोक और एक ओर खड़ा हो जा । वह प्राकृतिक चीज मुझसे मत छीन, जो तू मुझे अपने वैभवसे नहीं दे सकता ।'

सिकन्दर उत्तर सुनकर स्तब्ध रह गया । उसने एक आह भरते हुए कहा, 'हाय, मैंने आतङ्कद्वारा बड़प्पन प्राप्त करनेमें ही जीवन समाप्त कर दिया । यदि मैं सिकन्दर न होता, तो डायोनीज ही होना पसंद करता ।'

गुरु गोविन्दसिंह, वीर हकीकतराय, छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप आदि वीर अपने उच्च गुणों तथा पवित्र कर्मोंके कारण ही बड़े माने जाते हैं । उन्होंने क्षुद्र सांसारिक आदर्शोंके लिये कभी भी यह जीवन नष्ट नहीं किया था ।

माननीय गोखलेसे एक बार एक सम्पन्न व्यक्तिने पूछा, 'आप इतने बड़े राजनीतिज्ञ होते हुए भी गरीबीका जीवन क्यों व्यतीत करते हैं ?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'मेरे लिये गुण-कर्मोंकी उच्चता ही मनुष्यके बड़प्पनकी कसौटी है । पैसा जोड़नेके लिये जीवन-जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तुका अधिक भाग नष्ट करनेमें मुझे कोई बुद्धिमत्ता मालूम नहीं होती ।'

फ्रेंकलिनसे एक बार उनका एक मित्र यह पूछने गया, 'मैं अपना धन कहाँ रक्खूँ ?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'तुम अपनी थैलियोंको अपने सिरके अंदर उलट लो । (अर्थात् अपनी ज्ञानवृद्धि कर लो) तो उस धनको कोई नहीं चुरा सकेगा ।'

कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः ।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः ।
स्वधर्मान् नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः ।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः ।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती ।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गताः ॥

(शान्तिपर्व, मोक्षधर्म० १८८ । ११–१५)

अर्थात् मनुष्यो ! याद रक्खो, वर्णोंमें कोई शारीरिक

विभिन्नता नहीं है। सब आदमियोंके शरीर एक-से हैं। (स्वेद, मूत्र, श्लेष्मा, पित्त और रक्त सबके शरीरमें प्रवाहित हो रहे हैं।)

समस्त जगत्को ब्रह्माने पहले ब्राह्मणमय ही सृष्ट किया था। सब ही अच्छे थे। सबमें पवित्र गुणकर्म थे।

लेकिन बादमें सभी लोग कर्मानुसार नाना वर्णोंको प्राप्त हुए। पहले सब ही ब्राह्मण थे। फिर जो ब्राह्मण काम-भोगप्रिय, तीक्ष्णस्वभाव, क्रोधी, साहस प्रिय थे और स्वधर्मका त्याग करके राजसिक लोहित वर्णके आदमी हो गये, उन्हें क्षत्रिय कहा गया।

गोरक्षण-वृत्ति ग्रहण करके जो कृषिजीवी हुए वे स्वधर्मत्यागी पीले रंगवाले वैश्य हुए।

जो ब्राह्मण हिंसाप्रिय, अनृतप्रिय, लोभी और सर्व-कर्मोपजीवी हो गये, वे सफाईका काम करनेवाले काले रंगके व्यक्ति शूद्र कहलाये।

इस प्रकार गुण, कर्म और स्वभावकी विभिन्नताके कारण पृथक्-पृथक् ब्राह्मणलोग ही वर्णान्तरको प्राप्त हुए। अतः उनके लिये शुभ क्रिया और धर्म नित्य विहित है, निषिद्ध नहीं।

इन चारों वर्णोंको ज्ञानमें समान अधिकार है। ब्रह्माका यही पूर्वविधान है। लोभके कारण ही लोग अज्ञानको प्राप्त होते हैं।

अच्छे गुण, शुभ कर्म और मधुर स्वभावसे मनुष्य ऊँचा उठता है और बड़ा बनता है। कहा गया है—

एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्॥

अर्थात् 'याद रखिये, सदाचार और सत्कर्मसे शूद्र भी ब्राह्मणका गौरव प्राप्त करता है और वैश्य क्षत्रिय होता है।'

एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः।
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः॥

अर्थात् 'सत्कर्मके फलसे आगमसम्पन्न शूद्र सुसंस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त करता है।'

जहाँ एक ओर अच्छे गुण-कर्मसे नीची जातिवाले व्यक्ति ऊँचे उठ सकते हैं, वहाँ गंदे कार्यों और दूषित चरित्रसे उच्च वर्णके आदमी भी नीचे गिरते हैं। देखिये—

ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकरभोजनः।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः॥

अर्थात् 'ब्राह्मण भी असत्-चरित्र और सर्वसंकर भोजन करनेसे जातिच्युत होकर शूद्र हो जाता है।'

इसलिये शुभकर्म करना ही सबसे बड़ा धर्म है। अच्छे गुणोंको विकसित करना ही सबसे अच्छी नीति है। कर्मके द्वारा ही भाग्य बदला जा सकता है। भाग्यवान् होनेपर भी अच्छे गुण, कर्म और स्वभावसे ऊँचा उठा जा सकता है।

कबीर कहते हैं—

कबीर सब जग निर्धना धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सो जानिये जाके राम-नाम धन होय॥

अतः उत्तम गुण, श्रेष्ठ कर्म, सदाचार तथा सेवा-परायणता और भगवद्भजन—ये ही असली बड़प्पनके लक्षण हैं।

श्रीसत्यनारायणव्रत-माहात्म्यकथा

(लेखक—पं० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी)

साधारणतः जिसे 'सत्यनारायणकी कथा' कहते हैं, उसका पूरा नाम है—'श्रीसत्यनारायणव्रत-माहात्म्यकथा'। यह पूरा नाम ही पुस्तकोंपर छपा रहता है। यानी यह कथा 'सत्यनारायण'की नहीं; वरन् सत्यनारायणका 'व्रत' लेनेका जो महत्त्व है, उसकी कथा है।

'व्रत'का अर्थ आजकल 'उपवास' लिया जाने लगा है; परंतु मूलतः इस ('व्रत') शब्दका अर्थ कुछ और ही है। किसी अच्छे कामको जन्मभर करते रहनेकी सात्त्विक प्रतिज्ञाको 'व्रत' कहते हैं—

'प्रजानां पालनं हि मे व्रतम्'

प्रजाका पालन करना ही मेरा व्रत है—पवित्र कर्तव्य है। और—

'दृढ़व्रत श्रीहरिचंदको मिटै न सत्य विचार'

आदि प्रयोग स्पष्ट हैं।

'सत्य'का महत्त्व प्रकट करनेके लिये उसके साथ 'नारायण' शब्द जुड़ा है। किसीका सर्वोत्कृष्ट महत्त्व प्रकट करनेके लिये 'नारायण' या 'भगवान्' जैसे शब्द जोड़ दिये जाते हैं—'भगवच्छङ्कराचार्य' आदि। 'राम' (या 'नारायण') को 'सत्य' कहनेकी जरूरत ही नहीं है। 'सत्य'को सत्य क्या कहा जाय? पहले कोई एक बोलता है—'रामनाम सत्य है', तो उसके तुरंत बाद सम्मिलित आवाज उठती है—'सत्य बोले गत्य (गति) है'। रामका नाम तो सत्य है ही; पर वह तुम्हारा भला कैसे करेगा, यदि तुम उसके विमुख हुए? सत्य बोलनेसे गति होगी; सचाईका बर्ताव करनेसे नैया पार लगेगी; नहीं तो डूब जाओगे।

'माहात्म्य-कथा' में बहुतोंकी नैया डूबनेकी चर्चा है, जिन्होंने 'सत्यनारायण'के 'व्रत'को भङ्ग कर दिया था। सत्यनारायणका व्रत लिया और देखते-देखते मालामाल हो गये; परंतु प्रमादसे उस 'व्रत' को छोड़ा और गये। यही सब सत्यनारायणके 'व्रत'की 'माहात्म्य-कथा'में वर्णित है।

'व्रत'-कथासे स्पष्ट है कि व्यापार 'सत्यनारायण' की कृपासे चमकता है और व्रत भङ्ग होनेपर सब चौपट हो जाता है। ध्यान देनेकी बात यह है कि व्यापारीवर्गमें ही 'सत्यनारायणकी कथा' सुननेकी अधिक प्रवृत्ति है और ये ही लोग स्पष्ट कहते हैं—'भई, व्यापारमें तो झूठ बोलना ही पड़ता है।' एक दिन उपवास करके ये उसे 'सत्यनारायणका व्रत' समझते हैं। तब व्यापार कैसे चले?

इंग्लैंड, अमरीका, जापान आदि देशोंके व्यापारी 'सत्यनारायण'के व्रतसे धनकुबेर हो रहे हैं। अमरीकाके धनका क्या ठिकाना—यह इसलिये कि वे सत्यव्रती हैं। कम-से-कम व्यापारमें तो वे सत्यव्रती जरूर हैं। जो नमूना देंगे, वही माल भेजेंगे, जरा भी उन्नीस नहीं। इसका फल यह है कि उन्हें घर बैठे अरबों रुपयेके 'आर्डर' मिला करते हैं। और एक हम हैं कि नमूना कुछ दिखायँगे, माल देंगे कुछ और ही। सामने खड़े होकर माल लेनेमें भी डर लगा रहता है कि कुछ गड़बड़ी न हो। इसका फल सामने है! परंतु जो लोग सचाईका व्यवहार करते हैं, उनका कारबार और व्यापार चमकता है। यह और बात है कि दूसरे देशके लोग हमारे इन सत्यव्रती व्यापारियोंका भी उतना भरोसा न करें, या सहसा न करें; क्योंकि हैं तो ये हिन्दुस्तानी ही न! देशकी साख लोगोंने गिरा दी है; इसलिये 'सत्यव्रती' भारतीय व्यापारियोंको भी कठिनाई-का सामना करना पड़ता है। फिर भी, इनका व्यापार चमकता है। लोग सब समझ जाते हैं; परंतु 'दूधका जला मट्ठा भी फूँक मार-मारकर ही पीता है।'

सम्भव है, हमारे देशके भी व्यापारी उसी तरह आगे सत्यका व्रत लेने लगें और फिर हमारे भी भाग्य जागें, जैसे कि दूसरोंके जागे।

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ

(लेखक—डॉ० श्रीएल० एन० सक्सेना)

कर्मयोगीके लिये काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, हठ इत्यादि सर्वदा वर्जित है।

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना॥

काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥

काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥

बात सुननेमें अटपटी लगती है; परंतु इन्हीं 'काम' इत्यादिका प्रयोग भक्तिमार्गमें अपेक्षित है; किंतु आवश्यक यह है कि इनका प्रयोग करनेवाला इनके प्रयोगमें दक्ष हो; जैसे कि वैद्य दवाके रूपमें विषका प्रयोग करता है। संखिया या और कोई विषका घरमें रखना अहितकर है; किंतु डाक्टर या वैद्यके यहाँ सदैव रहता है और वह उसे रोगनाशके लिये ओषधिके रूपमें काममें लेता है। इसी प्रकार, आइये, हम भी विचार करें कि काम इत्यादिका प्रयोग रामचरितमानसमें किन भक्तोंने किया है।

उर अभिलाष निरंतर होई।
काम मनुजी — देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी।
जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति नेति कहि बेद निरूपा।
निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।
भगत हेतु लीलातनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा।
तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा।
क्रोध अंगदजी — क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना।
होइ पाप गोघात समाना॥

समुझि राम प्रताप कपि कोपा।
सभा माँझ पन करि पद रोपा॥

आजु राम सेवक जसु लेऊँ।
भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
लक्ष्मणजी — राम निरादर कर फल पाई।
सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू।
प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
मद — अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

कहावत प्रसिद्ध है कि लोभीकी चमड़ी जाय,
लोभ — मगर दमड़ी न जाय। जब श्रीविश्वामित्रजी दशरथजीके दरबारमें जाते हैं—

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥
असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥
सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥
मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥

तब मैं निर्गुन मत करि दूरी।
हठ — सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप॥

सियावर रामचन्द्रकी जय!

'मैं'की शोध

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'मैं कौन ?' नरेन्द्र चिकित्सा-विज्ञानका छात्र है। किंतु है वह अत्यन्त आस्तिक कुलका व्यक्ति। जब वह पाँच वर्षका था, तभीसे पिताने उसे प्रातः स्नान करके थोड़े-से श्लोक बोलकर, भगवान्‌को प्रणाम करके तब भोजन करना चाहिये, यह बात सिखा दी थी। किंतु चिकित्सा-विज्ञान लेकर उसके सम्मुख एक समस्या आ खड़ी हुई है। 'यह जीव क्या है ? 'मैं' इस शरीरमें कौन-सा तत्त्व है।'

बड़ी-सी चुटिया, ललाटपर चन्दन, गलेमें जनेऊ और अपने कमरेमें धोती पहिननेका अभ्यास। चप्पलके स्थानपर लकड़ीकी खड़ाऊँकी खटपट जिसे पसंद है, उसे स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयमें सहपाठियोंने कितना चिढ़ाया, सताया होगा,—आप बड़ी सरलतासे अनुमान कर सकते हैं। किंतु आपका अनुमान ठीक नहीं है। इस गौर-वर्ण, बड़ी-बड़ी आँखों और घुँघराले बालोंवाले अत्यन्त मेधावी, सशक्त छात्रको उसके सहपाठी सदा श्रद्धा और स्नेहसे देखते रहे हैं।

नरेन्द्र जब गाँवके स्कूलसे नगरमें आया, उसे केवल चार-छः दिन कुछ लोगोंने चिढ़ानेका प्रयत्न किया। प्रयत्न करनेवालोंको शीघ्र पता लग गया कि उनकी चेष्टा उन्हें महँगी पड़ेगी। नरेन्द्र झेंपने और डरनेवालोंमें नहीं था। उसने पीटा भी किसीको नहीं; किंतु जिसका हाथ पकड़कर उसने एक बार चेतावनी दे दी, उसे वह चेतावनी कभी भूल नहीं सकती थी। फिर कक्षामें और खेलके मैदानमें जिसकी प्रतिभा और स्फूर्ति समान रूपसे अग्रणी रहती हो, उसे उसके सहाध्यायी चिढ़ा कैसे सकते हैं ?

बात उलटी हो गयी। नरेन्द्रके होस्टलमें कइयोंने खड़ाऊँ पहिनना और जनेऊ पहिनकर संध्या करना प्रारम्भ कर दिया। नरेन्द्रसे पहले स्नान करके उसका आसन व्यवस्थित करने तथा संध्याका जल रखनेवाले श्रद्धालु भी उसे मिल गये। उसे प्रायः सभी 'नरेन्द्रजी' कहकर ही सम्बोधित करते थे। यह परिपाटी कॉलेजमें और विश्वविद्यालयमें भी ज्यों-की-त्यों बनी रही और जब नरेन्द्र चिकित्सा-विज्ञानका विद्यार्थी बनकर आया, उसका उपहास करनेका साहस पुराने छात्रोंको भी नहीं हुआ।

इतना संयमी, नियमनिष्ठ, आस्तिक व्यक्ति यह कैसे मान ले कि चेतना जड द्रव्योंकी विकृति है। देहसे भिन्न चेतन-तत्त्व कोई वस्तु नहीं है, यह भौतिक-वाद नरेन्द्रका हृदय किसी प्रकार स्वीकार नहीं करता।

'जैसे ईंटपर ईंट रखकर एक भवन बनाया जाता है, हमारा शरीर भी उसी प्रकार बना है। यह भी एक मकान है। इस मकानकी ईंटें हैं कोषिकाएँ। एक युवा स्वस्थ शरीरमें लगभग छः सौ खरब कोषिकाएँ होती हैं।' नरेन्द्रने शरीर-विज्ञानका यह तथ्य ज्ञात कर लिया है—'प्रत्येक कोषिकाके पास अपना मस्तिष्क—केन्द्रक (न्यूक्लियस) होते हैं। केन्द्रकके अपने ज्ञानसूत्र या गुणसूत्र (क्रोमोसोम) होते हैं और अपने संस्कारकोष (जीन) होते हैं।'

प्रत्येक कोषिका सोच सकती है, यह नरेन्द्र जानता है। उसे पता है कि कुक्कुटाण्डगत भ्रूणको यदि इस सुरक्षाके साथ निष्पेषित किया जाय कि कोषिकाएँ नष्ट न हों, केवल उनके क्रमको अस्त-व्यस्त करके पूरे भ्रूणको द्रव बना दिया जाय तो भी क्रिया-शीलताके योग्य परिस्थिति मिलनेपर कोषिकाएँ अपने सहयोगियोंको ढूँढ़ लेती हैं और कुक्कुट-शावकके अवयवोंका निर्माण करने लगती हैं। यदि कुछ कोषिकाएँ

नष्ट न कर दी गयी हों तो उस निष्पेषित द्रवसे भी कुक्कुटकी उत्पत्तिमें बाधा नहीं पड़ती । केवल कुछ देर लगती है ।

'प्रत्येक कोषिकाके पास आनुवंशिक संस्कार और अपना मस्तिष्क, तब इनमेंसे 'मैं' कौन ?' नरेन्द्र सोचने लगा है कि—'जिसे हम जीव कहते हैं, जो इस मनुष्यदेहका अभिमानी है, जिसे मनुष्य-देहके प्रारब्ध-का भोग करना है और जो इस देहके शुभाशुभ कर्मका उत्तरदायी है, वह कौन है ?'

× × ×

'बेटा, कलकी छुट्टीका प्रार्थनापत्र दे आना । कल अपने नये मकानका गृहप्रवेश है । पूजा तुम्हारे हाथसे ही होती है ।' नरेन्द्रके पिता गाँव छोड़कर नगरमें आ गये हैं । उन्होंने अब अपना मकान बनवा लिया है । मकानकी भूमि नरेन्द्रके नामसे ली गयी है और उसीको गृह-प्रवेशका प्रमुख बनना है । पिताने प्रातः अध्ययनके लिये जाते समय सूचना दे दी कि कल उसे घरपर ही रहना है ।

'यह गृह-देवता कौन ?' नरेन्द्रके मनमें एक प्रश्न और खड़ा हो गया । उसने बड़ी श्रद्धा और सावधानीसे पूजन-कर्म सम्पन्न किया था । किंतु क्षेत्रपालका भाग देते समय उसके मनमें जिज्ञासा जाग खड़ी हुई । पूजन-कर्मकी समाप्तिपर जब पण्डितजी भोजन करके बैठ गये निश्चिन्त होकर, तब नरेन्द्रने प्रश्न किया ।

'मकान तुम्हारे सामने बना है । सम्मुख न भी बना होता तो भी तुम जानते हो कि इसे कारीगरोंने कैसे बनाया है ।' विद्वान् हैं पण्डितजी । उन्होंने समझाया—'किंतु तुम्हारा शरीर भी तो तुम्हारे ही सामने प्रतिदिन बन रहा है। जो भोजन थालीमें है, वही क्या पेटमें जाकर 'मैं' नहीं बनता ? तुम्हारे शरीरका कण-कण इसी भोजनसे बनता है । इतनेपर भी शरीरमें तुम हो । देहमें जैसे जीव है, गृहमें वैसे गृह-देवता है । जड पदार्थका निर्माण भले जड द्रव्योंसे हुआ हो और हमारे सामने हुआ हो; किंतु जब एक संगठन बन गया, तब उसका अधिष्ठाता चेतन भी होता ही है । गङ्गाजीके जलका प्रत्येक कण जल है; किंतु पूरे प्रवाहकी अधिष्ठाता देवता गङ्गाजी हैं ।'

'यह जीव क्या है ?' नरेन्द्रके सम्मुख फिर वही प्रश्न आ गया । ईंटोंसे भवनके समान कोषिकाओंसे शरीर बना । भोजनसे कोषिकाओंका पोषण एवं वृद्धि होती है । गृह बना तो गृह-देवता, शरीर बना तो जीव; किंतु जीव है क्या ?

'जीव है'—यह नरेन्द्र असंदिग्धरूपसे मानता है । अतएव गृहदेवता भी हैं—प्रत्येक वस्तुके अधिष्ठाता देवता हैं, यह मानने-समझनेमें उसे कठिनाई नहीं होती है । अपने शरीरके मान-अपमान, सेवा-उपेक्षाका जैसे उसपर प्रभाव पड़ता है, वह तुष्ट-रुष्ट होता है और शरीरको औरोंके अनुकूल-प्रतिकूल बनाता है, वैसा ही गृह-देवता भी करते होंगे । यह बात भी नरेन्द्र ठीक समझता है । वह यह भी जानता है कि सेवा—सत्कारका माध्यम शरीरको ही बनाना पड़ेगा । किंतु जीव है क्या ?

'भैया ! तुम तत्त्वज्ञानकी बात पूछ रहे हो । जीव क्या है ? मैं क्या हूँ ? यह जान लिया तो परमात्माको जान लिया । इस आत्मामें ही परमात्मा बैठा है ।' पण्डितजीने सरलतापूर्वक कहा—'मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं है कि मैं आत्मज्ञानी नहीं हूँ । तुम्हारी जिज्ञासा सच्ची होगी तो कोई तत्त्वज्ञ तुम्हें प्राप्त हो जायगा ।'

जब कोई कह दे कि मैं यह बात नहीं जानता तो चर्चा समाप्त हो जाती है; किंतु चर्चा समाप्त हो जानेसे ही जिज्ञासा तो समाप्त नहीं हो जाती । इस प्रश्नका उत्तर प्राप्त कर लेना ही तत्त्वज्ञान है, पण्डितजीकी इस बातने नरेन्द्रकी जिज्ञासाको और

महत्त्व दे दिया था। वैसे भी वह किसी प्रश्नको अमीमांसित छोड़नेका अभ्यासी नहीं है।

'यह तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्न है।' पण्डितजीने नरेन्द्रको एक दिशा दे दी थी। तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नका उत्तर कोई तत्त्वज्ञानी दे सकता है। इस विवेकका फल हुआ कि नरेन्द्र साधुओंकी खोजमें रहने लगा। वह समय मिलते ही आस-पासके किसी साधुके समीप जा बैठता था। यथासम्भव कुछ सेवा करता था साधुकी। जल ला देता, आश्रम स्वच्छ कर देता और चुपचाप बैठा रहता। कभी-कभी कुछ फल या अन्य आवश्यक सामग्री भी साधुके लिये ले जाता था।

नरेन्द्रने धार्मिक साहित्यका अध्ययन कम नहीं किया है। वह उपनिषदोंकी उन कथाओंसे परिचित है, जिनमें तत्त्वज्ञानके जिज्ञासुको वर्षों तप करना पड़ा है। महापुरुष प्रसन्न हों और अधिकारी मानें, तब वे तत्त्वज्ञानका उपदेश करते हैं। पहुँचे और प्रश्नकी तोप दाग दी, इससे कोई लाभ नहीं होता, यह नरेन्द्रकी धारणा है।

× × ×

'बेटा! तुम मेरे पास कई दिनोंसे आ रहे हो। अच्छे सुशील और सेवा-परायण लगते हो। क्या चाहिये तुम्हें?' एक वृद्ध साधुने एक दिन नरेन्द्रसे पूछा।

'मुझे बहुत दिनोंसे एक प्रश्न तंग कर रहा है।' नरेन्द्रने नम्रतापूर्वक अपना प्रश्न बतलाकर प्रार्थना की 'यदि आप अनुग्रह करें।'

'भैया, तुम विज्ञानके विद्यार्थी हो। जानते हो कि इस चट्टानमें अग्नि है।' महात्माने गम्भीर होकर कहा—'चट्टानके एक कणको यदि तोड़ दो और तोड़ते ही चले जाओ तो क्या होगा?'

'केवल विद्युत् रहेगी परमाणुके टूटनेपर और ऐसा करनेमें कितना विनाश होगा, कहा नहीं जा सकता।' नरेन्द्र परमाणु-विज्ञानका विद्यार्थी न सही; किंतु उसे इतना सामान्य ज्ञान तो है ही।

'प्रत्येक परमाणुमें वह अपरिमित शक्ति स्वयं परमाणु बनी शान्त बैठी है।' महात्मा समझा रहे थे—'जबतक परमाणुको तोड़ो नहीं, उस शक्तिका पता भी नहीं लगता।'

'अभी थोड़े ही समयसे मनुष्य उस शक्तिसे परिचित हुआ है। इससे पूर्व तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि परमाणुमें इतनी शक्ति है।' नरेन्द्रने उत्साहपूर्वक कहा।

'उस शक्तिसे भिन्न परमाणु तथा उसके अवयवोंकी कोई सत्ता नहीं है। किंतु परमाणुको तोड़े बिना यदि उसके अवयवोंमें उस शक्तिको ढूँढ़ा जाय तो उसका पता लगेगा क्या?' महात्माने पूछा।

'नहीं लगेगा।' सीधा उत्तर था।

'परमाणु बना। उसके अवयव गठित हुए और वह असीम शक्ति उनमें सुप्त—अदृश्य हो गयी।' महात्माने कहा—'तुम्हारा जो इस देहके प्रति 'अहं' है, यही उस चेतनशक्तिको अदृश्य करनेवाला परमाणु है। इसे तोड़े बिना उस अनन्त चित्-शक्तिका साक्षात्कार सम्भव नहीं है। अतः इस परिच्छिन्न 'अहं' को टूटने दो।'

'किंतु शरीरके कर्मोंका भोक्ता जीव?' नरेन्द्रने अपने प्रश्नको फिर दुहराया। 'जीव तो परिच्छिन्न है और अहंके साथ है। जीवको समझनेके लिये अहंका उच्छेद क्यों आवश्यक होना चाहिये?'

'अहं'का उच्छेद किये बिना चेतनका स्वरूप समझमें नहीं आता और इसीलिये देहस्थ चेतनका स्वरूप भी तुम समझ नहीं पाते हो।' दो क्षण महात्मा गम्भीर हो गये और फिर उन्होंने कहा—'इस कुटियामें जो आकाश है, वह सम्पूर्ण आकाशसे पृथक् नहीं है, यह तुम समझते हो। घड़ेको लेकर चलें तो उसके भीतरका आकाश चलेगा या नहीं?'

'नहीं चलेगा।' नरेन्द्रको सोचना नहीं पड़ा। उसने स्थिर स्वरमें कहा—'आकाश चलता नहीं है।'

'किंतु घड़ेमें भरा धुआँ अथवा घड़ेके जलमें पड़ता सूर्यका प्रतिबिम्ब ?'

'धुआँ या प्रतिबिम्ब चलेंगे; क्योंकि घड़ेकी मिट्टीके कण धुएँ और जलको अपनी सीमामें रख सकते हैं।' नरेन्द्रने बताया—'किंतु आकाश इतना सूक्ष्म है कि मिट्टीके कणोंकी बाधा उसमें उपस्थित नहीं होती।'

'चेतन तत्त्व आकाशके समान व्यापक है। जब एक आकार बनता है, तब वह उसके भीतर ही बनता है। जैसे घड़ेमें आकाश अथवा व्यापक विद्युत्में परमाणु।' महात्माने समझाया—'सामान्य चेतन तो सर्वत्र है। वह आधार-स्वरूप है। जैसे व्यापक आकाश या विद्युत् सर्वत्र है। घड़ेके भीतर जो आकाश आ गया, वह घड़ेके भीतरके जल अथवा धुएँका धारक है। इसी प्रकार देहके भीतर चेतनका जो अंश है, वह देहका धारक है।'

'यही जीव या अधिदेवता है ?'

'नहीं, यह तो वासुदेव है! इसे हृदयस्थ ईश्वर कहते हैं। इसका जो प्रतिबिम्ब चित्तमें पड़ा—चेतनका प्रतिबिम्ब होनेसे उसमें भी चेतना है। जैसे सूर्यके प्रतिबिम्बमें प्रकाश होता है।'

'प्रतिबिम्ब होनेसे उसमें परिच्छिन्नता, चञ्चलता भी है।' नरेन्द्रने स्वतः कहा—'जिस चित्तमें वह प्रतिबिम्बित है, उसके भी कुछ गुण-धर्म उसमें आ गये हैं।'

'यही जीव है। यही अपनेको देहाभिमानी मानता है।' महात्माने कहा—'जब भी तुम मकान बनाते हो, उसमें अधिदेवता आ जाता है। यदि तुम जड द्रव्यको इतना परिष्कृत कर दो कि वह प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सके तो तुम अपनी प्रयोगशालामें जीव बना चुके—यह गर्व ले सकते हो; किंतु जीवन-तत्त्व चेतन तो सर्वाधार, सर्वव्यापी है।'

नरेन्द्रने महात्माके चरणोंमें मस्तक रक्खा। आज उसका समाधान हो गया था।

चक्र कैसे थमे ?

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

भोला-भाला शैशव-प्रभात हँसता-खिलखिलाता खेल-खिलारियाँ करता है, किलकारियाँ मारता हुआ कुलाँचें भरता है।

मदमाती यौवन-दुपहरी खुमारमें भरी झूमती-झामती है; अलसाये सन्नाटेमें लम्बी तानती है।

अनुभव-गर्विता जरा-संध्या उदास-सी रहती कुड़बुड़-कुड़बुड़ करती है; बढ़े चले आते अन्धकारके प्रगाढ़तर होते धुँधले-धुँधलेपनमें खोयी-सी—डूबी-सी जाती है।

दिन-सा कोलाहल भरा जीवन बीत जाता है। निस्तब्ध रात-सी मृत्यु आ जाती है।

और···और फिर दिन, फिर रात; फिर वही। परिवर्तन-चक्र चलता रहता है और मानव उस चक्रपर चढ़ा सुख-दुःख झेलता घूमता रहता है। चैन नहीं पाता; शान्ति नहीं मिलती।

कैसे थमे यह चक्र ? कैसे मिले चैन···शान्ति परम, चरम ?

इस तरह कि प्रथम तो मानव प्रतीति करे इस बातकी कि वह घूम रहा है, घुमेरमें है।

फिर स्वयंकी स्वयंताको सभी भ्रम-भ्रान्ति भरी जानी-मानी परतन्त्रताओंसे सर्वथा मुक्त करे; उसे तत्त्वतः जाने-पहिचाने।

और फिर घूमते-घुमाते···अब तो कहना चाहिये, घुमाते लगते-से चक्रकी धुरीसे उस स्वयंताका स्पर्श करा, उससे स्वयंकी एकताका भान करे।

बस, इतना करते ही बेड़ा पार है, चक्र थमा-थमाया है और शान्ति मिली-मिलायी !

क्या मांस-मत्स्य-अंडा-भक्षण-प्रचार भी लोक-कल्याण है ?

(लेखक—श्रीकस्तूरमलजी बाँठिया)

आज संसारमें सभी राज्य अपनेको लोक-कल्याण-राज्य कहलाना चाहते हैं। लोक-कल्याणके नामपर सारे संसारकी सरकारें मानवीय प्रवृत्तिके सभी क्षेत्रोंको अधिकाधिक नियन्त्रित और कितनोंको अपने अधिकारमें ले रही हैं। स्वतन्त्र भारतकी भी, उसके जन्म-दिनसे अबतककी, बराबर यही नीति रही है। इसी नीतिके अनुसार उसने प्रत्येक भारतीयको दोनों जून भरपेट भोजन मिले, इसकी भी अपनी जिम्मेदारी ले रक्खी है। परंतु देशमें पर्याप्त प्रयास करते हुए भी अन्नकी पैदावार योजनाके अनुसार नहीं बढ़ रही है, यह निःसंदेह गुरुतर समस्या है। किंतु तबतक भूखे पेट किसको रक्खा जा सकता है ? पेट तो भरा जाना ही चाहिये। इसीके लिये ही तो अंग्रेजीकी यह कहावत Beg borrow or steal (बेग् बॉरो ऑर स्टील) अर्थात् 'भीख माँगो, उधार लो या चोरी करो' फैली है।

मानव शाकाहारी है या मांसाहारी ?

मानव शाकाहारी है या मांसाहारी ? यह आजतक निर्णय नहीं हुआ और आगे भी होना कठिन ही है। फिर, भारतवर्षके सिवा अन्यत्र केवल शाकाहारी पाये ही नहीं जाते हैं। हमारा पड़ोसी और संसारकी सबसे घनी जनसंख्या-वाला चीन देश तो संसारका ऐसा सर्वभक्षी देश है जिसके लिये मानव-मांसके अतिरिक्त शायद ही कुछ अभक्ष्य हो। भारतवर्षमें अबतक भी संतोंकी ऐसी परम्परा चली आ रही है और बहुत सम्भव है कि वह सदा ही चलती रहे, जो भारतवासियोंको विशुद्ध शाकाहारी होने रहनेकी प्रेरणा प्रबल-रूपसे देती रहे और उससे प्रभावित होकर घोरतर मांसभोजी भी उसी तरह विशुद्ध शाकाहारी होते रहें जैसे कि सदा होते रहे हैं। परंतु ऐसा कभी नहीं हुआ कि सारा देश शाकाहारी हो गया हो; उस कालमें भी नहीं जब कि अहिंसाके अवतार भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध सदेही भ्रमणकर भारत-वासियोंको अहिंसाधर्मी बना रहे थे। निश्चयरूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि इस देशकी जनसंख्यामें शाकाहारी और मांसभोजीका कितना अनुपात होगा ? अभी हाल ही बम्बईमें हुए विश्व-शाकाहारी-सम्मेलनमें भाग लेनेको पाश्चात्त्य देशोंके अनेक प्रतिनिधि आये थे और सम्मेलनकी समाप्तिपर देशदर्शनके लिये इन्होंने भारतभ्रमण किया था। इस प्रतिनिधि-मण्डलने कलकत्तेमें पत्र-प्रतिनिधियोंको यह कहा-बताया है कि जहाँ यूरोपमें मांसाहारियोंकी संख्या तेजीसे कम होती जा रही है, वहाँ भारतमें यह बढ़ती जा रही है ! थोड़ेसे दिनोंके और निरे बड़े नगरोंके भ्रमणमात्रसे उन्हें यह अनुभव कैसे हो गया, इसपर उन्होंने प्रकाश नहीं डाला। परंतु उनके इस कथनमें अवश्य ही सार है कि 'यूरोपके लोग इसलिये अधिकाधिक शाकाहारी हो रहे हैं कि वहाँ प्रयोगोंद्वारा यह प्रमाणित होता जा रहा है कि मांसभोजी ही विभिन्न रोगोंके शिकार अधिक होते हैं।' जान-बूझकर रोगी तो कोई भी होना नहीं चाहता।

भारतमें मांस, मत्स्य और अंडेका आहार बढ़ रहा है !

देशमें मांस, मत्स्य और अंडेका आहार बढ़ रहा है, इसकी सचाई तो इसीसे प्रमाणित हो रही है कि पूर्णरूपेण शाकाहारी जैनों और वैष्णवोंमें भी आज यही शिकायत है। फिर अभी उस दिन ही तो श्रीमुरारजी भाई देसाई-जैसे चोटीके नेताने एक पत्र-प्रतिनिधिके भुवनेश्वरमें कांग्रेसकी स्वागत-समितिद्वारा 'प्रतिनिधियोंके लिये मांसाहारी भोजनका भी प्रबन्ध क्या किया गया था ?' प्रश्नका उत्तर देते कहा था कि 'इस देशका ८० प्रतिशत वर्ग मांसाहारी है। आसाम और उड़ीसा भी मांसाहारी है। वहाँ अधिवेशन हुआ। अतः मांसाहारियोंके लिये भी भोजनकी व्यवस्था थी। फिर कांग्रेस शाकाहारी है, ऐसा कौन कहता है ? गाँधीजी भी मांसाहारी अतिथियोंके लिये आश्रममें मांसाहार परोसने देते थे।' कांग्रेसके एक चोटीके नेताद्वारा उक्त कथन जहाँ अतिशयोक्ति हो सकता है, वहाँ यह भी स्पष्ट सिद्ध करता है कि इस विषयमें कांग्रेस सरकारें समग्ररूपसे किस विचारसरणीकी ओर बढ़ रही हैं; क्योंकि मुरारजी भाई पिछले सितम्बरतक केन्द्रमें वित्तमन्त्री थे और कांग्रेस हाईकमानके तो अब भी एक प्रमुख सदस्य हैं। मुरारजी भाई महात्माजीके आश्रमके अन्तेवासी कभी नहीं रहे, अतः वहाँ अतिथियोंको गाँधीजीकी प्रत्यक्ष या परोक्ष अनुमतिसे मांसाहार परोसा जाता था, ऐसा कहनेके वे अधिकारी कदाचित् ही हों। काकासाहेब कालेलकर-जैसे आश्रमवासी आज भी सद्भाग्यसे उपस्थित हैं। उन्हें इसपर

प्रकाश डालना चाहिये। जिन गाँधीजीने कस्तूरबाको घोर रुग्णावस्थामें ओषधिरूपसे भी मांसाहार देना स्वीकार नहीं किया, वे अतिथियोंको मांसाहार परोसने देते होंगे अथवा उनके माननीय अतिथि ही, यह बात जानते हुए कि उन्हें ऐसा भोजन परोसना प्रिय कभी नहीं हो सकता है, ऐसा भोजन स्वीकार कर लेते होंगे अथवा माँगते होंगे, बिल्कुल ही समझमें नहीं आता है। फिर सामाजिक भोजनोंमें मांसभोजी हिंदुओंतकमें आजतक भी शाकाहारी भोजन ही बनाया और परोसा जाता है। यद्यपि पाश्चात्त्य संस्कृतिके बढ़ते प्रभावस्वरूप और अपने-आपको सर्वथा आधुनिक सिद्ध करनेको आतुर लोगोंके कारण इस शुभ प्रथाको तोड़कर विशुद्ध शाकाहारियोंकी उपेक्षा करते हुए मांस-मत्स्यादि आमिषोंका प्रयोग बढ़ रहा है, यह बात भी स्वीकार करनी पड़ती है। आचार-विचारकी परम्पराओंको लगनेवाले ऐसे आघातोंकी परम्परा, यह बड़े खेदके साथ कहना पड़ रहा है कि स्वातन्त्र्य-प्राप्तिकी १६ वर्षकी अल्प अवधिमें ही जिस तीव्र गतिसे देशमें बढ़ी है, वैसी पिछले २००० वर्षोंमें कभी भी नहीं बढ़ी। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार-विचारके विषयमें हमारी धारणाएँ एकदम ही बदल गयी हैं। हमारी यह प्रवृत्ति कहाँ जाकर रुकेगी, इसका अनुमानतक लगाना कठिन है। इसका एक कारण यह भी है कि हमारा स्त्रीवर्ग, जो कि संसारमें सर्वत्र ही परम्परा-पोषक और संरक्षक रहा है, बहुत तेजीके साथ सभी बातोंमें आधुनिकतम होता जा रहा है। हालाँ कि उन्हें पुरुषवर्गके समान जीवनसंघर्ष तो आज भी नहीं करना पड़ रहा है। सबसे अधिक विचारणीय बात तो मध्यवित्तवर्गके स्त्रीवर्गमें हो रही द्रुतगामी क्रान्ति है। हमारी सरकारोंसे इसको आशातीत प्रोत्साहन भी मिल रहा है। गृहस्थी, जो समाजकी सर्वत्र और सदा रीढ़ रही और रहनेवाली ही है, विशृङ्खल होती जा रही है। हम सब जानते हैं कि सरकारद्वारा परिपोषित सांस्कृतिक आयोजनोंमें स्त्रियोंके नृत्य-गानको सर्वप्रमुख नहीं, तो भी, अति प्रमुख स्थान मिला हुआ है और ऐसे नृत्योंका धड़ाकेके साथ सार्वजनिक प्रदर्शन किया जाता है!

खान-पानमें शैथिल्यको सरकारद्वारा प्रोत्साहन

एक समय था जब कि पश्चिमसे आनेवाले अनेक प्रकारके पेटेंट खाद्यों और पेयोंके विज्ञापनोंमें खास तौरसे यह लिखा जाता था कि इनमें कोई भी अखाद्य पदार्थ नहीं है। गोदरेजने तो अपने नं० १ और २के विशेष साबुनके विज्ञापनमें यह घोषित किया और अबतक बराबर कर रहा है कि इसके निर्माणमें जैविक चर्बीका उपयोग नहीं होता और जो ऐसा प्रमाणित कर दे उसे अमुक राशि धनका पारितोषिक दिया जायगा। अखाद्य अथवा जैविक चर्बी शब्दोंके प्रयोगसे इस देशमें यही समझा जाता था कि इनमें अंडे, मछली, मांस और मछली आदिका तेल या इनकी बनी कोई चीज नहीं है। पाश्चात्त्योंके लिये तो इन शब्दोंका प्रयोग किया ही क्यों जाता? उन्हें तो ऐसी किसी भी वस्तुसे परहेज था ही नहीं और न आज है। खाद्याखाद्य अथवा बाहरी प्रयोगकी चीजोंका विचार तो इस भारतवर्षमें ही रहा और आज भी है; पर आजकल उन सब खाद्यों एवं पेयोंपर ऐसा कोई विज्ञापन नहीं रहा है। सब विलोप हो गये; क्योंकि देशमें उन सबका प्रयोग बिना झिझक बढ़ गया है और ठेठ सनातनीतक भी क्वचित् ही प्रयोग करनेमें अब हिचकिचाते हैं। पहले तो परस्परकी टीकाके डरसे खुलकर प्रयोग करते डरते थे, आज वह डरतक काफूर हो गया है। शायद हमारी इसी वृत्तिका हमारी लोककल्याण सरकार लाभ उठानेको प्रोत्साहित हो गयी है और अब हमारे बच्चोंको पौष्टिक चीजें खाने-पीनेको मिलें, इस दृष्टिसे स्कूलोंमें मुफ्त अंडे खिलानेको तत्पर हो गयी है।

पंजाब सरकारने अंडा खिलानेसे श्रीगणेश किया है

पंजाब सरकारने यह निर्णय किया है कि सब स्कूलोंके शिशुओंको प्रतिदिन एक अंडा स्कूलोंमें सरकारकी ओरसे खिलाया जाय; क्योंकि अंडोंमें सभी तरहके पौष्टिक तत्त्व हैं। पंजाबमें भी ऐसे शाकाहारियोंकी संख्या कम नहीं कि जिनके लिये मांस-मत्स्य ही नहीं, अपितु अंडातक अखाद्य है। ऐसे शाकाहारियोंमें जैन अग्रगण्य हैं, जिन्होंने अल्पसंख्यक होते हुए भी सरकारके इस प्रयोगका घोर विरोध किया और कर रहे हैं और उन्हें सनातनी हिंदुओंका भी पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त हुआ है। केन्द्र-सरकारको भी ज्ञापन दिये गये कि वह पंजाब सरकारको ऐसा करनेसे रोके; क्योंकि जनताके धर्ममें यह अवाञ्छनीय हस्तक्षेप है; पर केन्द्र-सरकार स्वयं ही मांस-मत्स्य-अंडा उद्योगों (?) को हर प्रकारसे प्रोत्साहित कर रही है तो वह प्रान्तीय सरकारोंको ऐसे प्रयत्नोंसे प्रकटतया विरत कैसे कर सकती है? इसलिये उसने यह कहकर कि वह प्रान्तीय सरकारोंके सुरक्षित अधिकारोंकी बात है, वैसे ज्ञापनोंकी उपेक्षा करना ही अच्छा समझा है।

बम्बईके जीवदया-प्रसारक मण्डल, जिसे 'ह्यूमैनिटेरियन लीग' भी कहा जाता है, ने भी पंजाबके जैनों और हिंदुओंके इस आन्दोलनको न केवल प्रोत्साहन ही दिया है; अपितु उसका अखिल भारतीय स्तरपर नेतृत्व भी सँभाल लिया है। उसीके प्रयत्नसे विश्वशाकाहारी-सम्मेलनमें भी इसके विरोधका प्रस्ताव पारित हुआ था। फिर ता० ८।१२ को ६ सदस्योंका प्रतिनिधि-मण्डल उक्त 'जीवदया-प्रसारक मण्डल'के महामन्त्री श्रीजयन्तीलाल मानकरके नेतृत्वमें पंजाबके मुख्यमन्त्री श्रीप्रतापसिंह कैरोंसे दिल्लीमें मिला, जिसे मुख्यमन्त्रीने आश्वस्त किया कि 'जिनको अंडेका विरोध नहीं होगा, उन्हें ही अंडा खानेको दिया जायगा। अंडोंका उत्पादन गाँव-गाँवमें बढ़नेसे कुक्कुटपालनद्वारा लोगोंको खूब ही कमाई होगी। शाकाहारी भोजनकी जहाँ कमी हो, वहाँ अंडे-मत्स्य-मांसादि खिलाकर बालकोंका स्वास्थ्य सुधारना राज्यका कर्तव्य—धर्म है। उनकी माता आज ८५ वर्षकी और पूर्ण शाकाहारी है। परंतु वे स्वयं मांसाहारी हैं; क्योंकि शाकाहारमें पौष्टिक तत्त्वोंकी कमी है।' जिस उम्रमें श्रीकैरों मांसाहारी हुए, तब तो यह तर्क शायद ही उनको सूझा होगा।

यहाँ हम इंगलैंडके प्रयोगका जिक्र कर देना आवश्यक समझते हैं और यह प्रयोग वहाँ सन् १९३० के करीब ही किया जाने लगा था। वह प्रयोग था दूधरूपी पेयका प्रचार, हालाँ कि वह देश तो मांस-मत्स्य-अंडा खानेवाला ही देश था। स्थान-स्थानपर बहुत-से दूधगृह उसी तरह खोल दिये गये थे जैसे कि शराबघर खुले हैं। बच्चा-बूढ़ा सब वहाँ जाकर चायके प्यालेसे भी सस्तेमें दूधका प्याला पी सकता था। 'अधिक दूध पीओ' के मोटे-मोटे विज्ञापनपटल जहाँ देखो, वहीं ध्यान आकर्षित करते थे। लेखकको सन् १९३७में वहाँ जानेका फिर अवसर आया तो इसकी प्रगति देखकर वह और भी चकित हुआ था। अंडोंके स्थानमें दूधका व्यापक प्रचार यही बताता है कि वे भी दूधको अंडेसे अच्छा, नहीं तो, बराबरका पौष्टिक तो मानते थे। सम्भव है वहाँ दूधका तब भी उत्पादन आवश्यकतासे अधिक होता हो; पर यहाँ तो आजके इस घोर वैज्ञानिक युगमें हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकारें उलटी गंगा बहाने लगी हैं। अंडेका प्रचार कर दूधके लिये गोपालनको आर्थिक दृष्टिसे हतोत्साहित करती रहना चाहती हैं!

श्रीकैरोंका यह तर्क कितना भ्रान्त है, यह तो उनकी ८५ वर्षीय माताके उदाहरणसे ही छिन्नभिन्न हो जाता है। उन्होंने प्रतिनिधि-मण्डलके प्रस्तावको एकदम ही ठुकरा दिया। जिस पंजाबमें आज भी लस्सी और दूध सामान्य जनका सर्वप्रिय पेय है और उसीके कारण पंजाबी देशमें अधिक लंबा, तगड़ा और बलिष्ठ है, उसी पंजाबमें शिशुओंको लस्सी-दूधसे बिमुख कर अंडे खाना इसलिये सिखाया जाता है कि मुर्गी-पालन-व्यवसायसे ग्रामीणोंको खूब कमाई होगी, कितने दुःखकी बात है। क्या यह इसकी अप्रत्यक्ष घोषणा नहीं कि दूधके लिये पशुपालन आर्थिक दृष्टिसे असफल ही रहनेवाला है? और है भी ठीक; क्योंकि सरकारी नीतिके कारण पशुओंके चरागाहोंकी समस्या गुरुतर हो गयी है। चारा भी महँगे-से-महँगा होता जा रहा है। मुर्गियोंका पालन न तो कठिन है और न खर्चीला ही। कुक्कुटपालक कितनी ही मुर्गियोंको एक साथ आसानीसे पाल सकता है। और फिर अंडे और मुर्गीके पैसे भी दूधकी अपेक्षा अच्छे मिलते हैं!!

संतानके पालन-पोषणके लिये सदा ही माता-पिता जिम्मेदार हैं

संतानके सुपोषणकी प्रमुख जिम्मेदारी तो उसके माता-पिताकी ही है। वह इस जिम्मेदारीसे मुँह नहीं मोड़ता। परंतु सरकारकी नीतियोंसे उसका निर्वहन उसके लिये प्रति-दिन कठिनसे कठिनतर होता जा रहा है। उसे हल नहीं कर, सरकारोंका संतानके सुपोषणकी जिम्मेदारी स्वतः अपनी कहकर शिशुओंको अखाद्य खानेको प्रोत्साहन देना प्रथम तो उस जिम्मेदारीका मखौल उड़ाना है और दूसरे अपनी धर्मनिरपेक्षताको भी ठुकराना है। लोकतान्त्रिक कही जाने-वाली सरकार लोकमतकी, चाहे वह छोटा अल्पमत ही हो, इस प्रकार अवहेलना—उपेक्षा करे, यह हमारे इस देशमें ही सम्भव है, जहाँ कि लोकतन्त्रकी जड़ जमानेवाला विरोधी दल है ही नहीं।

काँग्रेस कोई दल नहीं था, अपितु वह एक अखिल भारतीय संस्था थी। ब्रिटिश शासकोंका अप्रत्यक्ष समर्थन पाकर श्रीजिन्ना इसे हिंदू-संस्था कहने लगे और इस तरह उन्होंने अपनेको यहाँके मुसलमानोंका एकमात्र प्रतिनिधि कहना और मनवाना शुरू कर दिया। और उन्हें ऐसा ही मुसलमानोंका नेता मानकर अंग्रेजोंने भारतवर्षका विभाजन कर पश्चिमी और पूर्वी भारतके उस खण्डको, जहाँ जनगणनाके अनुसार मुसलमानोंकी संख्या अधिक थी, उन भागोंको पाकिस्तानके नामसे शासन उन्हें सौंप दिया और शेष भारतका काँग्रेसको। गाँधीजीने उस समय संस्थारूपसे काँग्रेसको राजनीतिसे अलग कर देनेका नेताओंको सुझाव दिया था; परंतु वह सुझाव

उनके अकस्मात् वधके बाद ही उनकी अन्तिम वसियतके नामसे प्रकाशित हो पाया। शुरू-शुरूमें काँग्रेस-नेताओंने उसके अखिल भारतीय रूपको कायम रखनेके लिये डा० अम्बेडकर, सर सम्मुखम् चेटी, सर जान मथाई, सर सी० डी० देशमुख आदि अनेक ऐसे लोगोंको अपने मन्त्रिमण्डलोंमें लेने और प्रान्तोंके राज्यपालतक बनानेकी तत्परता दिखायी और ऐसा किया भी, जो कभी काँग्रेसी नहीं रहे थे अथवा उसकी नीतिका घोर विरोध भी करते थे। परंतु धीरे-धीरे काँग्रेसमें दलीय भावना प्रबलसे प्रबलतर होती गयी और जो दलकी नीति स्वीकार नहीं कर सके, वे त्यागपत्र देकर पृथक् हो गये। पृथक् होनेवाले ये लोग विरोधका संयुक्त मोरचा बनाते तो सम्भव था कि देशमें एक शक्तिशाली विरोधी दलकी नींव लग जाती और वह जोर भी पकड़ लेता; परंतु अनेक कारणोंसे ऐसा न हो सका और राजनीतिक दल मात्र बनता जाकर भी काँग्रेसका अखिल भारतीय प्रभाव अक्षुण्ण ही रहा और आज भी है। अवसरवादी इसमें इसीलिये प्रवेश करते गये कि शासनको कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता थी। परंतु इन अवसरवादियोंको काँग्रेसकी नीतिसे नहीं, अपने-अपने स्वार्थोंसे मतलब था। काँग्रेसकी इन लोगोंने साँप-छछुंदरकी-सी गति कर दी, जो आज भी कायम है। इस स्थितिसे उबारनेका साहस अभीतक नेहरूजी तकमें भी नहीं हुआ और न है ही। अगले दो-तीन वर्ष यही स्थिति और चलती रही तो देशमें अवसरवादियोंका भयंकर संघर्ष उपस्थित हुए बिना नहीं रहेगा और ऐसी स्थिति पंजाबके मुख्य मन्त्री-जैसोंके द्वारा ही उपस्थित होगी जो भारी विरोधकी बराबर अवहेलना करते हुए अपनी गद्दीसे चिपके हैं।

खानेवालोंको भी अंडा खिलानेका कुप्रभाव तो पड़ेगा ही

इस परिस्थितिमें अंडा अथवा ऐसी ही जनमानसके पक्षविशेषको चिन्तित करनेवाली आशंकाओंकी देशकी सरकारें यदि अवहेलना करें तो आश्चर्य ही क्या है! उक्त प्रतिनिधिमण्डलके तथ्योंकी उपेक्षा तो देशकी संस्कृतिकी अवहेलना करनेवाले ही कर सकते हैं। प्रतिनिधि-मण्डलने कहा था—

शालाएँ बौद्धिक शिक्षाके स्थान हैं। उनमें भिन्न-भिन्न धर्म और भोजनके स्वभाववाले बालक केवल शिक्षाके लिये ही जाते हैं। पंजाबकी शालाओंमें कुल अठारह लाख विद्यार्थियोंमें आठ लाख यानी लगभग ४५ प्रतिशत शाकाहारी हैं। उनके साथ ही बैठे मांसाहारियोंको अंडे दिये जायँगे तो उसका शाकाहारी बालकोंपर बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है। और फलस्वरूप अहिंसाको धर्म माननेवाली जनताकी धार्मिक-मान्यता और आचारमें दस्तदाजी होगी। ऐसा धर्मनिरपेक्ष राज्यको नहीं करना चाहिये। फिर अंडोंसे दूध, फल आदि अधिक पौष्टिक एवं सस्ते हैं। दूध तो बालकोंके लिये सर्वाधिक आवश्यक भोजन माना जाता है और इसके प्रति किसीको ऐतराज ही नहीं होता। बहुतेरे राज्योंमें शालाके बालकोंको दूध पिलानेकी योजनाएँ बनायी भी गयी हैं। अतः पंजाब सरकारको भी दूधकी ही योजना करनी चाहिये; क्योंकि दोपहरमें भोजनकी असल योजना दूध देनेकी है। फिर पंजाबमें दूध पैदा भी खूब होता है और इसलिये प्रत्येक गाँवसे गायका दूध खरीदकर बालकोंको ताजा दूध पिलाया जा सकता है। इसमें खर्च भी कम होगा और गायोंके पालनको भी उत्तेजना मिलेगी। फिर, अमरीकाके भोजननिष्णात डाक्टरोंके अनुसार अंडे बदहजमी पैदा करते हैं और अंडेकी चिकनाईके कारण आमविकार होनेसे भी बहुत-से रोग पैदा होते हैं। इस प्रकार अंडेका प्रयोग मांससे भी बुरा है। अतः इससे बालकोंका स्वास्थ्य खतरेमें पड़ जायगा।

श्रीकैरोंने बचावमें कुक्कुट-पालकोंके आर्थिक लाभकी ही बात कही और आश्चर्य है कि यह नहीं कहा कि इस व्यवसायसे आगे चलकर विदेशी हुंडी भी कमाई जा सकेगी कि जिसकी खोजमें हमारी केन्द्रीय सरकार आजकल सदा ही व्यस्त रहती है और प्रत्येक कच्चे और पक्के मालका अधिक-से-अधिक निर्यात किया जाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्यतक मानती है।

मध्यप्रदेश सरकार भी क्यों पीछे रहे ?

जयपुरके पाक्षिक 'वीर वाणी'के ता० ३ फरवरी १९६४के अङ्कमें यह समाचार छपा है—'मध्यप्रदेशमें पौष्टिक भोजनका अभाव दूर करनेके लिये दूध, अंडा और मछली देनेकी योजना चालू की गयी है। नौ विकास खण्डोंमें अक्तूबरसे मार्चके बीच ६ वर्षसे कम उम्रके बच्चोंको एक तथा प्रसूता स्त्रियोंको २ अंडे मुफ्त देनेकी व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार विकास खण्डोंके उपग्रामोंमें प्रतिहजार जन-संख्याके पीछे ५० गर्भवती स्त्रियों और १०० बच्चोंको वर्षमें ६ महीनेतक मछली खानेको दी जायगी। तीन विकास खण्डोंमें ३४०० बच्चोंको और १७०० स्त्रियोंको ८ व ४ औंस दूध क्रमशः स्त्रियों और बच्चोंको दिया जायगा। यह कार्यक्रम ५ वर्षतक चलेगा।'

विकास खण्डोंमें सरकारकी ओरसे कुक्कुट और मत्स्य-केन्द्र खोले गये हैं, जिनकी उपजकी कोई भी खपत नहीं देखकर हमारी माई-बाप सरकारने स्त्रियों और बालकोंके प्रति असीम करुणार्द्रताका शायद यह अनूठा मार्ग निकाला है ताकि इन उद्योगोंकी सफलताका ढिंढोरा भी पीटा जा सके और स्वार्थ-

साधन भी होता रहे ! ऐसा प्रतीत होता है कि हमने स्वतन्त्र होकर देशको मांस-मत्स्य और अंडा-आहारी बनानेका अपनी विभिन्न राज्य-सरकारोंको मानो खुला आदेश दे दिया और इसीलिये वे यह काम योजनाबद्ध कर रहे हैं । ऐसा लगता है कि मांस-मत्स्यादि खाकर ही भारतवासी देशकी स्वतन्त्रता कायम रख सकेंगे और महात्मा गाँधीजीकी अहिंसा नीतिसे स्वराज्य चाहे हमें मिल गया हो, परंतु वह कायम नहीं रक्खा जा सकता ! क्या यह विडम्बना नहीं है ?

गुजरात शिक्षा-विभाग माताओंको आमिषाहार बनाना सिखाती है

देशके अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा गुजरात अत्यधिक निरामिषाहारी है; क्योंकि वहाँ जैनों, श्रीवल्लभाचार्यके मतानुयायी वैष्णवों और स्वामी सहजानन्दियोंकी संख्या अधिकतम है और ये सब जैविक ओषधियोंतकसे परहेज करते हैं । इन्हें मांस-मत्स्य और अंडा पंजाब एवं मध्यप्रदेशकी तरह सीधा खिलाना कठिन होनेसे इनके प्रति घृणा मिटानेका प्रच्छन्न प्रयत्न स्त्री-शिक्षाद्वारा किया जा रहा है । देशकी मांसाहारी जातियोंमें भी स्त्रियाँ मांस बना तो देती हैं, पर स्वयं नहीं खातीं—ऐसी जातियाँ हैं । ये स्त्रियाँ अपने चौकेसे बाहर ही ऐसा करती हैं । युद्धमें लड़ने तो पुरुषोंको जाना होगा, न कि स्त्रियोंको । परंतु वे घरका भोजन त्याग मांस खानेको प्रतिदिन बाहर कैसे जा सकते हैं और मांसके प्रति उनके भाव कैसे बदल सकते हैं ? अतः गुजरातकी स्त्रियोंको आमिषाहारी बनानेकी शिक्षा देनेका आयोजन वहाँ गृहविज्ञान-शिक्षाके अन्तर्गत हो रहा है ।

बड़ोदाके एक पिताने जिसकी दो पुत्रियाँ बड़ोदाके महाविद्यालयमें गृहविज्ञानमें शिक्षा ले रही हैं, सर्वत्र परास्त होकर अन्तमें राष्ट्रीय शाकाहारी सम्मेलनके अध्यक्ष डा० सी० पी० रामस्वामी ऐयरको जो पत्र लिखा, उससे कुछ अंश ही यहाँ उद्धृत करते हैं—

'मेरी दो पुत्रियाँ बड़ोदा युनिवर्सिटीकी होम-साइन्सकी फैकल्टीमें गृहविज्ञानके शिक्षा-विभागमें अनुक्रमसे पहले और दूसरे वर्षमें अभ्यास कर रही हैं । दूसरे वर्षके उनके अभ्यासक्रममें भोजन एवं पोषणमें (फूड एवं न्यूट्रिशन) का मुख्य विषय उन्हें सीखना है । इस विषयको सीखती विद्यार्थिनियोंको व्यावहारिक पाकशास्त्र भी सीखना होता है । इसकी शिक्षा लेनेवाली प्रत्येक विद्यार्थिनीको आमिषाहारकी विभिन्न चीजें निरपवाद अनिवार्यतया तैयार करनी होती है । चाहे विद्यार्थिनी चुस्त शाकाहारी कुटुम्बकी है या मांसाहारीकी । ऐसा कोई भी भेद स्वीकार नहीं किया जाता है । जब मेरी पुत्रियोंने मेरा ध्यान इस बातकी ओर खींचा तो मैंने उस महाविद्यालयकी प्रिंसिपलको पत्र लिखकर यह समझानेका प्रयत्न किया कि 'यह प्रक्रिया हमारे धर्म एवं जीवन-सिद्धान्तोंके एकदम ही विपरीत है और मेरी पुत्रियोंको इससे मुक्त किया जाय ।' पत्र पाकर प्रिंसिपलने मेरी पुत्रियोंको कहा कि 'आपके पिता तो एकदम ही पुरातन और पिछड़े विचारोंवाले हैं ।' उन्होंने मुझे लिखित उत्तर भी भेज दिया कि 'जिस प्रकारका वह विद्यालय है, उसमें धार्मिक भूमिकापर कोई भी अपवाद नहीं किया जा सकता और प्रयोगशालासम्बन्धी किसी भी प्रयोगसे विद्यार्थिनियोंको मुक्त नहीं किया जा सकता ।'

प्रत्यक्ष बातचीतसे भी जब प्रिंसिपलको अपने कठोर निर्णयसे चलित नहीं किया जा सका, तो इसका अर्थ यही होता है कि या तो ऐसी विद्यार्थिनियाँ उस विद्यालयमें पढ़ना छोड़ दें अथवा उन मांसाहारी भोजन-प्रयोगोंकी कक्षामें गैरहाजिर रह उतने ही अंकोंकी हानि उठायें और केवल इसी कारण अन्य विषयोंमें चाहे कैसी ही प्रवीण वे क्यों न हों, अनुत्तीर्ण हो जायँ अथवा श्रेणी गुमायें । जो ऐसा सहन नहीं कर सकतीं या न करना चाहें, उन्हें इसके सिवा दूसरा विकल्प रहता ही नहीं कि वे माता-पिता एवं अभिभावकसे सच्ची स्थिति छिपाकर अपने जन्मजात संस्कारोंका दमन करती हुई नियत मांस-बानगीका प्रयोग करती जायँ । पाठ्यक्रममें ऐसी अनिवार्यता नहीं होते हुए भी यदि विद्यालय उसे अनिवार्य बना दें और किसीको अपवादरूप भी मुक्ति न दे तो यही समझना चाहिये कि मांस-मत्स्यादि आहार प्रचार करनेको ही ऐसी प्रिंसिपल नियत की जाती है । पता नहीं कि उस विद्यालयमें पकाये हुए आहारोंको खिला और खाकर भी परीक्षा करनेका अनिवार्य नियम था या नहीं । यदि नहीं तो इसे भूल ही कहा जाना चाहिये । खाकर ही तो पक्वान्न कैसा बना, यह जाना और आगेके लिये सुधारा जा सकता है । गृहविज्ञानान्तर्गत पाकशास्त्रमें सबके लिये आमिषाहार बनाना डाक्टरीमें मेढकादि चीरने-जैसा क्या अनिवार्य है ?

यों तो संसार सारा ही व्यक्तिपूजक है, परंतु हम भारतवासी सबसे अधिक हैं । इसीलिये हमारे देशमें सब कुछ उस समयतक सहा जाता रहा है, जबतक कि कोई असाधारण विभूति प्रकट न हो । महात्मा गाँधीसे प्रेरणा पाकर ही तो हमने अंग्रेजी राज्यके अत्याचारोंसे विरुद्ध आवाज उठायी थी और उसे अन्तमें समाप्त कर ही दिया ।

हमारी अपनी सरकारको हम इसीलिये सहते जा रहे हैं कि किसी दिन उसे अपनी भूलें समझमें आ जायँ और वह उन्हें सुधार दे । हम क्या पढ़ें, हम क्या खायँ, हम क्या और कैसे कपड़ा पहनें एवं ओढ़ें, इन सभी बातोंमें बढ़ता

हुआ सरकारका हस्तक्षेप कभी-न-कभी रंग लाये बिना नहीं रह सकता । परिस्थितिको उत्तरोत्तर बिगड़ने देना अवसरवादियोंके कारण ही है, जो स्वार्थके कारण समयका लेख पढ़ नहीं पा रहे हैं ।

धर्मपर आघातने ही अंग्रेजोंके विरुद्ध सन् १८५७का स्वातन्त्र्य-संग्राम भड़काया था । वे विदेशी थे, परंतु उनके पूर्वज मुगल भी जब धर्मपर आघात-पर-आघात करते देते रहे तो अंग्रेजोंका स्वागत किया गया । काँग्रेसी सरकार यदि इस सीमातक गिर गयी तो वह भी टिकी नहीं रह सकती । चाहे देशमें उसकी प्रतिस्पर्द्धामें दूसरा दल स्थायी सरकार बना सके या नहीं । महात्मा गाँधीजीका बताया मार्ग ही देशको भावी संकटसे बचा सकता है, परंतु उससे हम पिछले सोलह वर्षोंसे दूर-से-दूर ही जा रहे हैं, यही महान् दुःखकी बात है ।

काकासाहेब कालेलकरने 'मंगल प्रभात' पाक्षिकके ता० १ । ४ के अंकमें 'मांसाहार और हमारा रुख' शीर्षकसे वह पत्र उद्धृत किया है जो उन्होंने मगनभाई देसाईको मुरारजी देसाईके कथन कि 'आश्रममें अतिथियोंको मांस भी परोसा जाता था' के निराकरणरूपसे लिखा था । उसमें काकासाहेब लिखते हैं कि 'जहाँतक मैं जानता हूँ, आश्रममें कभी भी मांस पकाया नहीं जाता था और मेहमानोंको या किसीको परोसा नहीं जाता था।' मुरारजी देसाईको काकासाहेब एवं अन्य आश्रमवासियोंका उत्तर बताया तो उन्होंने आश्रमके मन्त्री नारायणदास गाँधीको यह लिखा कि 'मुझे कुछ वर्षों पूर्व आश्रमवासी भाइयोंने ऐसा कहा था । इसपरसे मैंने ऐसी बात की । किसने कहा यह मुझे अब याद नहीं है । मेरी बात गलत हो तो मेरी भूल मैं खुशीसे स्वीकार करूँगा ।' खेद है कि उन-जैसे कुशल शासक बिना पूरा पता लगाये सुनी-सुनायी महात्मा गाँधीजी-जैसेके लिये कोई बात कह दें तो ऐरेगैरेको तो कहा ही क्या जा सकता है ? काकासाहब आदिके निराकरणके बाद भी उन्होंने अपनी भूल-स्वीकृतिका अभीतक ऐलान नहीं किया, यह उन-जैसोंके लिये शोभनीय तो नहीं ही कहा जायगा ।

भयानक पशुवध !

(राज्योंके पशुवध-नियन्त्रक कानूनोंपर एक दृष्टि)

सम्पूर्ण गोहत्याबंदीवाले राज्य

राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, त्रिपुरा और जम्मू काश्मीर आदि देशी राज्योंमें सदैवसे गोहत्या बंद थी । मैसूरमें १९४८ में गोवध-निवारण कानून बना । देशकी राजधानी दिल्लीमें भी म्युनिसिपल बोर्डकी सीमामें १९४८ से गोहत्या बंद कर दी गयी । इसी प्रकार पंजाबमें भी १९५६ में सम्पूर्ण गोवध-निवारण कानून बना । इस कानूनमें गोहत्या करनेके अपराधमें दो वर्षकी कैद अथवा १०००) रुपया जुर्माना या दोनों सजाओंकी व्यवस्था है । गोमांस बेचनेके अपराधीके लिये भी एक सालकी कैद अथवा २००) रुपये जुर्माना या दोनों सजाएँ दी जा सकती हैं । जम्मू काश्मीरमें गोवध करनेवालेके लिये दस वर्षकी कैद और जुर्मानेकी व्यवस्था है ।

उत्तरप्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश

इन तीनों राज्योंमें सम्पूर्ण गोहत्याबंदीके कानून १९५५-५६ में बने थे; परंतु इन प्रान्तोंके कसाइयोंकी दरख्वास्तपर सुप्रीम कोर्टने वहाँके कानूनोंमेंसे बैलोंकी हत्याबंदीकी धारा निकलवा दी और केवल उपयोगी बैलोंकी हत्यापर प्रतिबन्ध लगानेको वैध माना । सुप्रीम कोर्टके इस निर्णयके अनुसार इन राज्योंके कानूनोंमें संशोधन किया गया है ।

उड़ीसाकी सरकार निष्क्रिय

उड़ीसामें सुप्रीम कोर्टके निर्णयके अनुसार गोवध-निवारण कानून बने दो साल हो चुके हैं; परंतु उसे सरकारने अभी लागू नहीं किया और इस तरह यहाँ गोहत्या जारी है ।

गुजरातमें सम्पूर्ण गोहत्या बंद

सौराष्ट्रमें सदासे ही सम्पूर्ण गोहत्या बंद थी । गुजरात राज्यका निर्माण होनेपर आज सौराष्ट्रके अनुसार समस्त प्रान्तमें गोहत्या बंद कर दी गयी है ।

लंगड़े कानूनोंवाले राज्य

आसाम, प० बंगाल, आन्ध्र, मद्रास, केरल और महाराष्ट्र (बम्बई) में अभीतक सम्पूर्णरूपसे गोहत्या बंद किये जानेके कानून नहीं बने हैं । यहाँ केवल उपयोगी गोवंशकी हत्या बंद करनेके ढीले-ढाले प्रभावहीन कानून बने हैं । इन सभी प्रदेशोंमें वैध और अवैध गोहत्या जारी है । कलकत्ता तो देशके सर्वश्रेष्ठ गोधनकी हत्याका सबसे बड़ा केन्द्र बना हुआ है । यहाँ प्रतिवर्ष ३०, ४० हजार हरियाना नस्लकी गौएँ दूध सूखनेपर कसाईकी छुरीके नीचे चली जाती हैं और उनके बच्चे कलकत्ता पहुँचनेके एक महीना पश्चात् होटलवालोंके यहाँ चले जाते हैं ।

× × ×

सरकारी बूचड़खाने

महाराष्ट्र सरकार बम्बई कारपोरेशन और भारत-सरकार-की मददसे चिम्बूरके निकट देवनार स्थानमें कई करोड़की लागतसे एक विशाल यान्त्रिक कसाईखाना बनानेवाली है, जहाँ छः घंटेमें प्रतिदिन ६ हजार भेड़-बकरी, ३०० सौ गाय-बैल और १०० सूअरोंकी हत्या होगी। यह कारखानेकी केवल एक शिफ्ट होगी।

इस कसाईखानेमें विदेशी सरकारोंके सहयोगसे कत्ल किये पशुओंके अङ्ग-उपाङ्गोंसे ओषधियाँ भी बनायी जायँगी। इस तरह महाराष्ट्र राज्य पशुवधका सबसे बड़ा केन्द्र बनने जा रहा है! यह हर्षकी बात है कि जनता इस राष्ट्र-विघातक योजनाका जोरदार विरोध कर रही है।

पिछले महीने समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है कि जैन गुरुकुल पंचकूला (अम्बाला) के निकट सरकार एक बड़ा कसाईखाना बना रही है। जैन तथा हिंदू जनता इस अनर्थका घोर विरोध कर रही है।

देशकी स्थितिके सम्बन्धमें !

कुछ बोलते हुए आँकड़े !!

(१) भारतकी जनसंख्या (१९६१) ४३,९२,३५,०००

(२) देशकी कुल पशु-संख्या (१९६१) २२,६८,०९,१२०

गोवंश ... १७,५६,७१,८४१

भैंसवंश ... ५,११,३७,२७९

(३) देशमें कुल कृषियोग्य भूमि (१९५८-५९) ४२,१५,२१,००० एकड़

(४) मनुष्य एवं पशु खाद्य विशेषज्ञ समिति (१९५४) की रायके अनुसार आठ एकड़ भूमिके लिये ... ... एक जोड़ी बैल चाहिये।

(५) देशमें बैलोंकी कमी—

(क) कृषिके लिये बैलोंकी आवश्यकता १०,५३,८०,२५०

(ख) तेलके कोल्हुओं, शहरोंमें गाड़ियों तथा बोझा ढोनेके लिये बैलोंकी आवश्यकता १५,६५,०००

कुल जोड़ ... १०,६९,४५,२५०

पशु-गणना १९६१ के अनुसार कृषि योग्य पशु—

(क) बैलोंकी संख्या	६,८६,०१,६१४
(ख) गायोंकी संख्या	२१,७७,१६९
(ग) नर-भैंसोंकी संख्या	६६,०५,१५०
(घ) मादा भैंसोंकी संख्या	४,९७,५३४
कुल जोड़	७,७८,८१,४६७

७,७८,८१,४६७

देशमें बैलोंकी कमी ... २,९०,६३,७८३

(६) देशमें दूधकी कमी—

दूधबाजार रिपोर्ट १९५१ और पशु-गणना रिपोर्ट १९५६के अनुसार भारतमें गाय, भैंस और बकरीके दूध देनेकी वार्षिक क्षमता घट रही है। जैसा कि नीचेके आँकड़ोंसे प्रकट होगा—

	गायका दूध	भैंसका दूध	बकरीका दूध
सन् १९५१	४१३ पौंड	११०१ पौंड	१३४ पौंड
सन् १९५६	३६१ पौंड	६७० पौंड	१२७ पौंड

सन् १९५१ और १९५६ की पशु-गणनासे दूधवाले पशुओंकी संख्यासे दूधकी पैदावारका हिसाब लगाया

गया तो इन पाँच सालोंमें ५,१८,९५,९६३ मन दूध कम हुआ है। यानी १९५१ में ५२,८९,११,६१५ मन और १९५६ में ४७,७०,१५,६३२ मन दूधकी पैदावार हुई है।

(७) वनस्पति तेल (नकली घी) आज भारतमें शुद्ध घीकी पैदावारको खत्म कर रहा है। जो सज्जन नकली घी खरीद-कर थोड़ा पैसा बचाते हैं, उससे कहीं अधिक डाक्टरोंको देकर उनकी जेब भरते हैं।

		नकली घीका उत्पादन मनोंमें		शुद्ध घीका उत्पादन मनोंमें
१९३७	...	६,५०,०००	...	२,३०,००,०००
१९४७	...	३१,५०,०००	...	१,११,००,०००
१९५१	...	——	...	१,२०,६८,०००
१९५६	...	७१,४८,८२०	...	१,०८,९२,०००
१९५७	...	८९,६०,०००	...	——

(८) देशमें गोवध बढ़ रहा है। विदेशको खालोंके निर्यातका हिसाब

		स्वराजसे पहिले (१९४६-४७)	स्वराजके बाद (१९५५-५६)
बछड़ोंकी खालें	......	१,२०,०००	२६,७७,६२५
गायोंकी खालें	......	६,२५,०००	५३,९२,७३८

(९) देशमें सरकारी विशेषज्ञोंके मतानुसार ७० प्रतिशत पशुओंको चारा और केवल ३१ प्रतिशतके लिये दाना है। पशु-खाद्यकी इतनी कमी होते हुए भी सरकार दूसरे देशोंको चारे-दानेका निर्यात करती है।

	१९५३-५४	१९५४-५५	१९५५-५६
चारा छिलका (टनोंमें)	७६४	२५,१२६	६८,७२५
दाना खली (टनोंमें)	६,११९	३९,३९७	१,६२,७०२
कुल कीमत (रुपयोंमें)	१०,३६,७८५	१,९९,०२,५८५	६,९७,११,३७४

गोवंशके पौष्टिक खाद्य गुँवारका निर्यात

साल	वजन	मूल्य
सन् १९६०	१२,६८४ टन	एक करोड़ रुपये
जनवरीसे १५ जुलाई १९६१	५,६२५ टन	४६ लाख रुपये

(१०) एक ओर देशमें पशुओंका चारा-दाना बाहर भेजे जानेसे दूधका उत्पादन घटाया जा रहा है। दूसरी ओर विदेशोंसे दूधका पाउडर, मक्खन और घी, पनीर आदि पदार्थ मँगवाकर भारतके विदेशी मुद्रा-कोषको कम किया जा रहा है—

साल	दूध	मक्खन	घी	पनीर	जोड़	कुल मूल्य रुपयोंमें
१९३९-४० (टन)	३,२२६	१८७	२,६९४	४८२	६,५९९	८०,८६,०००
१९५१-५२ (टन)	२५,३८८	८६१	१	४८८	२६,७२८	६,२५,७८,०००
१९५५-५६ (टन)	४५,३८१	६३९	२,२२९	६७२	४८,९२१	११,१९,८७,०००

(११) देशकी कुल राष्ट्रीय आय १९६०-६१ में १४,२०० करोड़।

(१२) प्रसिद्ध पशु-विशेषज्ञ डा० राइटने १९३५ में उस समयके भावोंके अनुसार गोवंशसे होनेवाली आय ११ अरब अर्थात् ११०० करोड़ रुपया बतायी थी; परंतु आजके भाव १९३५ की अपेक्षा कई गुने हैं। अतः आज गोवंशसे देशको अनुमानतः तीन हजार करोड़से ऊपर ही आय होती है जो समस्त राष्ट्रीय आयके एक चौथाईसे अधिक होती है। फिर भी सरकार मुर्गी-पालन और मछली-उद्योगको प्रोत्साहन दे रही है !!

पशुधनके ह्रासले देशमें संकटकी सम्भावना

लोकसभाके सदस्य चौधरी श्रीयुद्धवीरसिंहने अपने एक वक्तव्यमें कहा कि मैंने १० सितम्बर ६३ को केन्द्रीय खाद्य एवं कृषि-मन्त्री सरदार स्वर्णसिंहको एक पत्र लिखकर खेद प्रकट किया है कि देशमें विभिन्न पशुवधशालाओंद्वारा पशुधनका ह्रास हो रहा है, उसके कारण निकट भविष्यमें हमारी कृषि-व्यवस्थामें भारी संकट आनेकी सम्भावना है।

चौधरी श्रीयुद्धवीरसिंहके पत्रके उत्तरमें १९६०-६१ के सरकारी १३१४ और गैर सरकारी ७७० यानी कुल २०८४ बूचड़खानोंमें वध हुए पशुओंकी संख्या इस प्रकार बतायी गयी—

सूअर ४५६४९, भैंस २७७९७७, अन्य पशु ३१५५१२, भेंड़ ४२३४८२८, बकरियाँ ४५०२५७८।

पत्रके आधारपर सबसे अधिक बूचड़खाने उत्तरप्रदेशमें हैं, जिनकी संख्या १३४७ है। दूसरा स्थान मैसूर राज्यका है जहाँ २३९ पशुवधशालाएँ हैं।

चौधरी श्रीयुद्धवीरसिंहने केन्द्रीय सरकारसे अनुरोध किया कि देशमें पशुधनके ह्रासको रोकनेकी दिशामें विशेष ध्यान दिया जाय।

पशुधनके इस बढ़ते हुए विनाशका परिणाम लोक-परलोकमें कितना भयानक होगा, इसपर विचार करते ही हृदय काँप उठता है।

—मन्त्री भारत गोसेवक समाज, दिल्ली

भेड़ियाधसान विज्ञान-प्रवृत्ति

(लेखक—स्वर्गीय श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

ससारमें मानव ज्ञान-अज्ञानका अजीब मिश्रण है। महान् ज्ञानी और निरा अज्ञानी दोनों अपने समन्वयमें बराबर बैठते हैं। दोनोंमें विवेकबुद्धि और मूर्खता या अन्धविश्वासका अनुपात घट-बढ़ होकर दोनों बराबर बैठते हैं।

Every person on earth is a strange mixture with sense and nonsense in proportion like material volume and pressure constant.

पश्यति इति पशुः। दूसरोंको देखकर या स्वभावप्रवृत्ति (instinct) से वैसा करे वह पशु है। मननात् मनुः। विचार-विवेकसे आचरण करनेवाला मनुष्य है। अतः मनुष्यकी स्वतन्त्रतामें सार्थकता हुई। परंतु यहाँ तो देखा-देखी मान्यता—क्रियासे संसारके सब मानव पशुवत् हो गये!

धार्मिक अन्धविश्वासके बदले अब वैज्ञानिक अन्धविश्वासका जमाना प्रचलित हो गया। एकने नाक कटाकर आसमानमें परियोंका नाच देखा तो सब लोग नाक कटाकर वही गीत गाने लगे। वैज्ञानिक लोग देखते हैं कुछ, समझते हैं कुछ दूसरा। अन्धोंके अन्धकारसे प्रकाश सूझता है और संसारके आँखवाले भी उनके अदृश्य लोकके दर्शक बनकर खूब वाह-वाह कर रहे हैं। धर्म-व्यवहार तो युग-परिवर्तन, देशकालके अनुसार बदलता है, सदा कायम नहीं रहता। महाभारतकालमें भीष्मने बताया था। वह यही वैज्ञानिक युगमें आँखवालोंने अणुवीक्षकद्वारा देखा है।

जिन अन्वेषकोंको आकाश-पातालमें महतो महीयान् परमात्मा नहीं मिला, अणोरणीयान् आत्मा अपनेमें नहीं मिला, आत्मतत्त्व आत्मज्ञान आत्मविश्वास खोकर—न पाकर उन्होंने परमाणु-कीटाणु प्राप्त किये हैं और उन्हींकी पूजा-प्रतिष्ठामें स्वयं तथा संसारको जघन्य बनाया और बर्बाद किया है। अब अनन्त लोकमें गुजरकी जगह ढूँढ़ रहे हैं।

जिस बातको कल चमत्कार कहकर सौदा बेचते, आज उसे त्यागकर दूसरी नयी बात करते हैं। सल्फानोमाइड और एंटिबायोटिक (Sulphanomides and Antibiotics) चमत्कारी दवाइयोंके घातक प्रभाव ज्ञात हुए हैं। परंतु व्यवसाय-वृत्तिवाले अभी भी भेड़ियाधसान बने उसमें संजीवनी मानते हैं। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेससे प्रकाशित एक पुस्तकमें इन ओषधियोंकी विषाक्त प्रतिक्रियासे होनेवाले रोगोंकी चर्चा करते हुए अनुभवी वैज्ञानिकोंने चेतावनी दी है। मई १९५९ के प्रसिद्ध 'मेडिकल वर्ल्ड' में ए० मेलविन रैमजे, एम० ए०, एम० डी०, रायल फ्री हास्पिटल, लन्दनके कीटाणुजन्य रोग-विभागके चिकित्सकने एंटिबायोटिक दुरुपयोगपर चेतावनी दी है। प्रसिद्ध डॉक्टरी अखबार 'लांसेट'के सम्पादकने १९५५के अङ्क २ में ही लिखा था कि 'इनके बिवेकहीन तरीकेसे कितना स्वास्थ्यघात हो रहा है, अस्पतालोंमें ही रोग फैल रहा है, जैसे न्युमोनियाँ और आँतोंकी सूजन। 'लांसेट' के सितम्बर

१,१९५६ के अंकमें पृष्ठ ४४० पर पेनिसिलिनके घातक प्रभावोंका वर्णन किया गया था । 'मेडिकल वर्ल्ड'के फरवरी १९५९ अङ्कमें लिखा था कि 'पेनिसिलिनसे अबतक एक हजार मृत्यु होना पाया गया है ।'

'In U. S. A. it is currently estimated that over 1000 one thousand deaths from penicillin have occurred.'

अमेरिका देशभरके अस्पतालोंकी शैयाओंमें २९ प्रतिशत लोगोंपर १९५४, १९५५ और १९५६ सालोंमें जाँच करके एंटिबायोटिककी जीवनघातक प्रतिक्रियाओंकी संख्या २९९५ पायी गयी, जिनमें १०७० व्यक्तियोंपर उग्र और ९०१ पर जीवनघातक सिद्ध हुआ । १६१६ व्यक्तियोंपर पेनिसिलिन घातक हुई । 'जर्नल ऑफ अमेरिकन मेडिकल असोसिएशन' के १९५८ के अङ्क १६८, पृष्ठ १८७५ पर डॉ० डब्ल्यु० हेरलने एंटिबायोटिकसे कई बीमारियाँ होना पाया है । डॉ० रामजेने लिखा है—

"Although the harards of antibiotic therapy would seem to have attained greater proportions in the U. S. A. than in Great Britain, there can be little doubt that they are inceasing everywhere. The literature now contains a wealth of evidence testifying to the menace of staphyloccocus as a source of serious cross infection and high mortality in hospitals by the injustifiable use of antibiotics prophylactically.......”

जब इन दवाओंसे स्वयं अस्पतालोंमें लोग मरते हैं, उन्हें बचाया नहीं जा सकता, तो अपने घरोंमें डाक्टरी सलाहसे दवा करवाकर मरनेवालोंकी संख्याकी कल्पना कीजिये !

१९५९ में स्वास्थ्य-मन्त्रालयकी उपसमितिद्वारा जो स्थायी मेडिकल सलाहकार समितिका अङ्ग थी, एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी जिसमें आगे चलकर लिखा है—

'Acceptance in all departments of medical practice that nothing is gained by hurried recourse to chemotherapy in infections which carry no threat to life. Thus their routin use for colds and catarrh is indefensible. Even for life threatening infections it remains a cardinal principle of therapy that the requisite materials for bacteriological investigations should be obtained prior to the commencement of therapy.

The routin prophylactic use of chemotherapentic agents should be permanently discontinued in all departments of medical practice. Many studies have shown that while no advantage accrues from such use, it may prove dangerous in promoting drug-resistant strains of organisms and in favouring the more rapid developments of sensitization in susceptible individuals...... All surgeons should revert to the practice of strict asepsis."

रोग-निरोधके लिये एंटिबायोटिक दवाओंका प्रयोग बिल्कुल बंद कर देना चाहिये, इसे किसी भी रोगमें कोई लाभ होनेकी अपेक्षा घात होता है, ऐसा तय पाया और सलाह दी है कि सब सर्जन लोग इसका हर प्रकार प्रयोग बंद कर दें ।*

इसमें 'एंटिबायोटिक' और 'थेमोतेरपी' शब्द आप समझें ! एंटिबायोटिकका अर्थ है Anti-against, detrimental, hazardous, और Biotic का अर्थ है जीवन-सम्बन्धी, biosis का अर्थ है 'जीवन' । अतः इसका अर्थ हुआ 'जीवन-घातक', यह शब्द ग्रीक भाषासे लिया गया है जिसे साधारण लोग न समझकर इसे कोई नयी आविष्कृत

---

* आज तो भारतमें भी इन एंटिबायोटिक दवाइयोंका अंधाधुंध प्रचार हो रहा है—हजारों कारखाने बन गये हैं इनके निर्माणके और बहुत बड़ी संख्यामें डाक्टर तथा औषध-विक्रेता लोग एजेंट बने जिस किसी प्रकारसे इन दवाइयोंका विस्तार कर रहे हैं। छोटे-छोटे गाँवोंमें भी ये दवाइयाँ प्रचुर मात्रामें खपने लगी हैं । फलतः जनताके धन तथा स्वास्थ्यका बुरी तरह नाश हो रहा है । उस दिन एक अनुभवी सिविल सर्जनने कहा था कि आजकल हमारे अस्पतालमें आनेवाले रोगियोंमें रोगके रोगियोंकी संख्या बहुत थोड़ी होती है और दवाके रोगियोंकी संख्या बहुत अधिक !'

अब तो हमारी सरकार भी करोड़ों रुपये लगाकर करोड़ों रुपयेकी एंटिबायोटिक दवा जनताको रोगमुक्त (या रोगमय) बनानेके उद्देश्यसे निर्माणके लिये कारखाने खोल रही है । जनतामें रोगनाश होनेपर तो कारखाना फेल ही होगा । अतः इनसे स्वाभाविक रोग-विस्तार ही किया जायगा !

संजीवनी मानते हैं। इसमें पशुओं, प्राणियोंके मांस-मवाद भी हैं!

कैमोथरपी हुआ रसायनोंद्वारा चिकित्सा। रसायन-तत्त्व दो प्रकारके पदार्थ होते हैं—शरीरी और अशरीरी Organic और Inorganic, अर्थात् कार्वन, जलनशील वे पदार्थ जो हमारे शरीरद्वारा आत्मसात् हो सके—यथा साग, फल, अन्न, दूध आदि। दूसरे अशरीरी रासायनिक जड पदार्थ जो शरीर-धर्ममें आत्मसात् नहीं होते—यथा लोहा, कोयला, सोना, चाँदी, गंधक। इस प्रकारकी वस्तुओंसे बनी दवा नामकी हर चीजें शरीरपर उग्र उत्तेजक प्रभाव करती हैं और शरीरकी प्रणालीमें रुकी रहती हैं, बाधा पहुँचाती रहती, कालान्तरसे उभरती हैं। इस विषयमें प्रसिद्ध सर्जन अखबार 'लांसेट'के २ दिसम्बर १९५३ के अङ्कमें घातक प्रभावोंसे आँतोंमें सूजन और मृत्यु होनेपर सम्पादकीय चर्चा छपी थी;

Fatal cases of enterocolitis which developed suddenly during the administration of aureomycin or terramycin to patients whose primary illness was unrelated to the gastrointestinal canal, comment was made—

'We normally live on peaceful terms with our intestinal bacteria, and it seems almost ungracious and certainly naive to disturb their balance suddenly in preparing for a surgical operation. We cannot by giving known antibiotics eliminate all forms of biding micro-organisms from the intestinal truct, and we must expect that suppression of the species sensitive to chosen antibiotic will favour proliferation of those which are insensitive............ Commonsense suggests that it may be best for the patient to weather a surgical crisis in company with the organisms with which he has to come in terms.'

अर्थात् विषाक्त रासायनिक दवाएँ देकर अपने शरीरके कीटाणुओं और व्यवस्थासे छेड़-छाड़ करोगे तो वे भयानक प्रतिक्रिया करेंगे, रोग बढ़ायेंगे। और होता भी यही है। कीटाणु नहीं मरते, बहुरूपिया रूप धारण करते हैं, इससे अच्छा है उन्हें वैसे ही रहने दो, स्वाभाविक आत्मसंरक्षण-शक्तिपर निर्भर करो।

अन्धानुगमन

वैज्ञानिकोंका स्वार्थी घृणित जंजाल—कीटाणुवाद और परमाणुवाद(Germ theory and Atomic theory) इतना व्यापक घातक सिद्ध हुआ कि वह संसारमें रोग-मृत्यु बढ़ाकर मानवका और सारे संसारका विनाश कर रहा है। जिस नये सिद्धान्त-शास्त्रका इन्होंने निर्माण किया वह इनका ही मुँह तोड़ने, सिर फोड़नेकी सामग्री उगलने लगा और अब ये उल्टी बातें करने लगे। परंतु स्वार्थी दुराग्रही लोग इतने अन्धभक्त बने हुए हैं कि लकीर पीटते ही जा रहे हैं!

डाक्टरोंकी स्थानीय-संस्था, जिला-संस्था, प्रान्तीय-संस्था, राष्ट्रीय-संस्था और विश्व संघटित-संस्था—(Local, District, Provincial, Country and World Medical Associations) आपसमें जंजीर बनी गुँथी हुई है। दुनियाँके अंध भक्तोंकी बनी सरकारें इन अंध-विज्ञानियोंकी फौज-संघटित व्यक्तियोंको आत्मसात् करके अपने सम्प्रदायके पेट-परिवार-पोषणार्थ ऐसे कानून बनाती हैं जैसे ब्रह्मवाक्य होकर सारे विश्वमें मान्य हों। जिस प्रकार अन्ध-परम्परासे, धार्मिक रिवाजसे अंधानुगामी जनतामें पण्डे, पण्डित, पुजारी—जन्म-मरणतक अपना टैक्स पाते रहे, वह अब अन्ध-वैज्ञानिक रूपमें डाक्टरके पास पहुँच गया। डाक्टरके बिना जन्म होना, रोग होनेपर मृत्यु होना—अपराध, गैरकानूनी और अप्रमाणित माना जाने लगा।

सब देशोंकी सरकारोंमें यह राजनीतिक एवं शासकीय अंधविश्वास भेंड़-चालकी तरह फैला है। अमुक देश सभ्य विकसित वैज्ञानिक हैं। रोगको रोकने, उम्रको बढ़ाने, मौतको रोकने, जन्म रोकने, संसारकी कीटाणुवत् बढ़ती जन-संख्यापर नियन्त्रण करनेके नये-नये विचित्र वैज्ञानिक चमत्कारी साधन करते हैं। अतः हम भी अनुकरण करते हैं परंतु उनका दुष्परिणाम नहीं देखते-सुनते, नहीं विचार करते।

युद्धसे विनाशका नियन्त्रण करने, परस्परके मामले निबटानेके लिये पहले 'लीग आफ नेशन्स' बना था, उसे हिटलरने न माना, युद्ध हुआ ही। फिर राष्ट्रसंघ बना। इसके भाई पैदा हुआ—विश्व-स्वास्थ्य-संघ (Health

Organization) जिसका कार्यालय जिनेवा-स्विजरलैंडसे रोग-निरोध-नियन्त्रणके लिये छः महाद्वीपोंमें क्षेत्रीय कार्यालय रखकर, संसारके सौसे अधिक देशोंसे आर्थिक सहयोगपर, पाँच भाषाओंमें अपने द्विमासिक प्रकाशन करता रोगोंका विवरण-जंजाल प्रकाशित करता है। जब यह संस्था जन्मी तो ज्यों-ज्यों इसकी नीति पुष्ट होती गयी, त्यों-त्यों अनेक देश अन्धानुगामी होकर भेड़चालसे शामिल होते गये।

इन सबका अर्थ होता है कि संसारमें अमुक-अमुक देशोंमें अमुक रोग होता है, इसकी रोक-थाम और खोज-शोधके लिये वैज्ञानिक, डॉक्टर, नर्स चाहिये, अस्पताल चाहिये। इन सबके लिये इतने लाख-करोड़ रुपये चाहिये, सामग्री चाहिये। अमुक नया रोग फैला, नये कीटाणु, विषाणुका पता लगा, उसे मारनेके लिये विषौषध खोज करने-बनाने, प्रचलित करने, टीका-अभियानके लिये और हरेक बच्चे, माता और मानवको रोग-रक्षित रखनेके लिये, टीका-इंजेक्शन प्रचलित करनेके लिये कानून बनाना चाहिये। भूमिमें, जलमें, दूधमें, खाद्य-सामग्रीमें, वातावरणमें रासायनिक, विषमारक, कीटाणुनाशक तत्त्व घोलना, फैलाना चाहिये, जिससे उन कीटाणुओंका प्रभाव मानवपर न हो।

यह सब हो भी रहा है, परंतु कीटाणु नहीं मरते; मजबूत होते जा रहे हैं, रोग नये-नये पैदा होते जा रहे हैं और वैज्ञानिकोंकी खोजमें उनका सिर दर्द करता ही है।

कीटाणुवादका सिद्धान्त है कि एक रोगीको मच्छर या कीटाणु काटकर दूसरे स्वस्थ व्यक्तिको काट ले और फिर अन्य व्यक्तिको, तो उन सब व्यक्तियोंको आदिम रोगीका रोग हो जायगा। उक्त रोगीके रक्तमें रोगके कीटाणु होते हैं जो अमुक मच्छर या कीटाणुके दाँत, लार, खूनके साथ अन्य लोगोंको काटे जानेपर रोग प्रसार करते हैं। छूतके रोग भी इसी प्रकार होते हैं।

इसीका उल्टा विज्ञान भी चिकित्सामें सिद्धान्त है कि अमुक रोगीके रक्तमेंसे रोगके कीटाणु निकालकर उन्हें वैज्ञानिक विधिसे उबालकर कमजोरकर, उनकी विषाक्तता नष्टकर मवाद या रक्त-जल (Serum, lymph) में घोलकर, अन्य तरल रसायनोंमें मिलाकर यदि रोगियोंकी देहमें टोंच दिया जाय तो रोग दूर होगा, स्वस्थ व्यक्तियोंमें टोंचा रक्तमें घोल दिया जाय तो उन्हें रोगका आक्रमण न होगा; क्योंकि उसके रक्तमें मवाद कीटाणुकी बनी बलवान् फौजें मौजूद कर दी गयी हैं।

सरकारोंद्वारा एक देशसे दूसरे देशोंमें अन्धविश्वास अनुकरणसे इस प्रथाको वैज्ञानिकोंने प्रचलित करा दिया। जनसाधारण स्वभावतः मानव-जातिका विश्वास करता है, बुद्धिपूर्वक और अन्धबुद्धिपूर्वक।

ऐसे रोगनिरोधक घृणित टीके बनाने और प्रचारित करनेके वैज्ञानिकोंके गुट्टके बड़े-बड़े कारखाने और दुकानें हैं, जहाँ अनेक प्रकारके पशुओं, कीट-पतंगोंकी हत्या होती, उनके रक्त-मवाद निकाले जाते, हवाबंद बोतलोंमें रक्खे जाते और इन्जेक्शन-टीका रूपी छोटी-छोटी बन्दूक-पिस्तौलकी गोलियों-सरीखी बंद काँच-बोतलों—एम्पूलके रूपमें बेचे जाते हैं, जो मौकेपर आपकी संतान और आपकी देहपर चुपड़े-टोंचे जाते हैं। अपनी देहमें रक्तमें आत्मसात् करते हुए आप उसकी गंध-स्वाद भी नहीं जान पाते, उसका कुछ विवरण भी नहीं जानते कि यह पदार्थ क्या है, किन वस्तुओंके नुस्खेसे बना है। यदि आप उस अधिकारी डॉक्टर या वेक्सीनेटरसे सारा वृत्तान्त जाननेके लिये पूछें तो वह उत्तर देगा—'तुम्हें आम खाना है या पेड़ गिनना है। सब लोग टीका ले रहे हैं, सब लोग मूर्ख थोड़े ही हैं। यह वैज्ञानिक नुस्खोंसे बनी दवा है जिससे हवा भी न लगे, बड़े प्रबन्धसे सुरक्षित रक्खी जाती है, बड़ी सफाईसे इसका उपयोग किया जाता है कि हवाके कीटाणु भी इसे छू न पावें। हमारी सरकारने जनताको स्वस्थ रखनेके लिये भलाईका विचारकर इसे प्रचलित किया है, अरबों रुपये खर्च करती है, तुम कैसी बहकी हुई बातें करते सवाल पूछते, बातपर बातकी जड़ खोदते, बालकी खाल खींच रहे हो!'

वह तुम्हें असली बात नहीं बताता; शायद वह जानता भी नहीं, अथवा जानता भी है तो भी डाक्टरी वैज्ञानिक-नीतिके अनुसार यह वैज्ञानिक रहस्यकी बात गुप्त रखनेकी कसम ले रखी है, वर्ना उसे डाक्टरी रोजी-रोटीसे हाथ धोना पड़ेगा, वह वैज्ञानिक जातिसे बाहर कर दिया जायगा, उसे कोई दूसरा धंधा तो मालूम नहीं, पेट-परिवार कैसे पालेगा!

अन्धेर क्यों ?

संसारमें मनुष्य पाँच लाख वर्षोंमें बहुत अनुभव पाकर, दो हजार वर्षोंमें बहुत विकसित, शिक्षित, ज्ञानी, विज्ञानी, कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक होकर भी उसकी व्यवस्थामें अज्ञान, धूर्तता, अत्याचार, अनाचार, दुराचार, ज्ञान और व्यवस्थाके नामपर परस्परको लूट-खसोट, ठगबाजी, सर्वत्र गरीबी, विषमता, अल्पता-बहुलता रोग अन्धेर क्यों है ? हम कहते कुछ, करते कुछ और होता

कुछ क्यों है ? हमने जन्म लेकर बाह्यवृत्ति व्यवहारको—गणित, खगोल, भूगोल-भूगर्भ, व्यापार-उद्योग, कानून, व्यवस्था, मुकदमेबाजी, दण्ड, अपराध, लेन-देन इत्यादि खूब सीखा, पढ़ा, किया। दूसरोंकी नकल करते हुए परम्परा कायम रक्खी, परंतु अपने विषयमें अपना शरीर, ज्ञान और रक्षाके विषयमें कुछ भी विज्ञान और कला न सीखकर, इस विज्ञान-कलानिष्णात विशेष समुदायके आश्रित रहना स्वीकार किया है। दिया तले अँधेरा कहना अनुचित नहीं, लेकिन वास्तवमें पृथ्वीपर अँधेरा है; क्योंकि एक व्यक्ति, एक देश नहीं, सारे संसारमें ऐसी ही परम्परा चली आ रही है। संसारमें सर्वत्र लोग बहुत करके वासनाजन्य खेतीसे अनायास जन्मते, पलते, अन्धेर व्यवस्थामें कीटाणुवत् धूर्त मानसिक, भक्ष्य-भक्षकी भाँति परस्पर निभते-निभाते और रोगी होकर अनाड़ी विज्ञान-प्रयोगके जंजालमें अथवा स्वयं अज्ञानमें, अनाश्रित लाचारीसे मर जाते हैं। इस कारण गम्भीर विचारशील लोगोंने इस संसारको असार—मृत्युलोक कहा है, अन्य लोगोंको स्वर्ण-समान दिव्य प्रकाशवान स्वर्गलोक, अमरलोक कहा है। अन्धकारमय पृथ्वीपर रोग, मृत्यु और अन्धेर-व्यवस्था, अज्ञान होना स्वाभाविक है।

वैज्ञानिक लोग दूसरे लोकोंके विषयमें अपनी संकीर्ण भौतिक कूपमण्डूक कल्पना बुद्धिसे इतना सूक्ष्मविचार न कर उन्हें केवल आगका गोला, पानीका गोला या धातुका गोला मानकर, केवल अपनी पृथ्वीको ही सर्वस्व और स्वयं मानवको सर्वश्रेष्ठ अधिपति मानते हैं, जैसे भैंसकी नाकपर बैठा मच्छर भैंसपर अपना आधिपत्य मानता है।

वैज्ञानिक नादिरशाही

दक्षिण अमेरिकाके ब्राजील राज्यमें फोर्टालीजा नगरका समाचार 'Vaccination on Sante' शीर्षकसे 'L' union, के ३०–११–६०, अखबारमें छपा है, जिससे एक घातक टीकेके प्रचारसे बाईस व्यक्तियोंके मर जानेके समाचार दिये गये हैं। फोर्टालीजा तीन लाखकी जनसंख्यावाला अभागा नगर है—जहाँ इस 'कुत्ते काटनेके टीके' लिये हुए एक सौ आठ व्यक्ति और भी अपनी मौतका इन्तजार करते पागल हो गये हैं। वे दूसरे लोगोंको काटने दौड़ते हैं। लोग कुत्तेको देखते ही पत्थर-लाठी मारने लगते हैं, भागते हैं, घरमें घुसते, दूकानें बंद करते हैं। ब्राजील राज्यका यह उत्तरी नगर मुसीबतमें है। लोग परस्परको देखकर नजर घूरते, कुत्तोंकी तरह गुर्राते हैं, लड़ बैठते हैं, सबको टीका लग चुका है। फिर टीकेका घातक प्रभाव और निर्माणमें भूल मालूम होनेपर वैज्ञानिकोंके निर्देशसे सरकारद्वारा सड़कपर रेडियो लगाया गया, प्रचार किया गया कि अमुक टीका घातक है, उसका उपयोग मत करो। दूकानदार वापस कर दें, वह टीका कोई भी न लगाये। एक दिन एक सौ तीस व्यक्तियोंको कुत्ते काटनेका यह टीका लगा था, दूसरे दिन उसके घातक प्रभावसे बाईस व्यक्ति मर गये। बाकी एक सौ आठ भी मर रहे हैं। ये बड़ी कठोर पीड़ामें मरते हैं। जिस प्रकार कुत्ते, गीदड़, भेड़ियेके काटनेसे मनुष्य उनके समान ही भौंकता-गुर्राता पागल होकर मरता है, वैसे ही ये लोग टीका—इंजेक्शन लेकर मनुष्य रूपमें पागल कुत्ते बन गये हैं। पिछले सप्ताह एक ऐसी टीका ली हुई माताने अपने बच्चेको दाँतसे काट लिया।

एक डाक्टरने अपने लड़केको टीका लगाया था—वह भी मर गया। एक बच्चा बेचारा कुरूप हो गया। एक ऐसे ही व्यक्तिने टीका लेनेसे पागल होकर, फोर्टालीजाके डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक हेल्थ लेबोरेटरी-डा० लिटनके पास जाकर उसे झगड़ेमें घायल कर दिया। जिसका बेटा टीका लगानेसे मर चुका था, अब उसके मरनेकी बारी थी। चाहे कितनी ही बातें रेडियोसे चिल्लाओ, टीका तो लग चुका। कुछ भी इलाज करो, लोगोंकी मृत्यु अवश्य होगी। जानकर लोग पागल हो रहे हैं।

वह डाक्टर लिटन, प्रयोगशालामें बीस वर्षसे यह टीका बना रहा था। अब उसी अस्पतालकी प्रयोगशालामें बंद वही डाक्टर रोता-चीखता, पछताता-चिल्लाता अपने भाग्य (मौत) का इन्तजार कर रहा है। कोई उसकी नहीं सुनता, कोई उसके पास नहीं जाता। डा० लिटन बीस वर्षोंसे वहाँका राजकीय हेल्थ सरविसका डाइरेक्टर रहा है, उसने दूसरे डाक्टरद्वारा वह टीका नगरमें लोगोंको लगानेके लिये भिजवाया था। उसने स्वीकार किया है कि मैंने यह टीका बीस वर्षोंसे बनाया है। मुझसे भूल हो गयी।

यह समाचार 'France Soir' के दो दिसम्बर १९६० में प्रकाशित हुआ था। यह कैसा स्वार्थी अन्ध-वैज्ञानिक नादिरशाही परोपकार है ? आजके इस विज्ञान और इन वैज्ञानिकोंके मायाजालसे बचनेमें ही कल्याण है !

पढ़ो, समझो और करो

(१)

जार्ज वाशिंगटनका त्याग

पहले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका इंगलैंडके अधीन था। इंगलैंडकी दासतासे मुक्ति पानेके लिये अमेरिकाको एक युद्ध लड़ना पड़ा था, जो इतिहासमें अमेरिकाके स्वातन्त्र्य-युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। इस युद्धमें अमेरिका विजयी रहा। इस विजयका सारा श्रेय जार्ज वाशिंगटन (१७३२—१७९९) को था। वाशिंगटन एक लोकप्रिय नेता और सफल सेनानायक थे। अपने सैनिकोंमें वे बहुत ही लोकप्रिय थे। अमरीकी सैनिक उनके लिये प्राण देते थे। इस प्रेम और भक्तिका फल यह हुआ कि कुछ सैनिक अधिकारियोंने चुपके-चुपके इस बातकी तैयारी प्रारम्भ कर दी कि जार्ज वाशिंगटनको संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाका सम्राट् घोषित किया जाय और उससे एक नये राजवंशकी स्थापना हो। जब सेनाका अधिकांश भाग इसके लिये तैयार कर लिया गया तब, इस मामलेमें जो सबसे अधिक उत्साह दिखला रहे थे उन, कर्नल निकोलाने वाशिंगटनको इस शुभ अवसरके लिये तैयार हो जानेको लिखा। वाशिंगटनने पत्र प्राप्त करके निकोलाको पत्रका जो मुँहतोड़ उत्तर लिखा, उसका कुछ अंश इस प्रकार है।

न्यूबर्ग, मई २२ सन् ८२ (१७८२ ई०)

श्रीमान्!

····मैं श्रीमान्‌को विश्वास दिलाता हूँ कि सारे युद्धके दौरानमें मुझे किसी भी घटनासे इतना कष्ट नहीं पहुँचा, जितना इस समाचारसे कि, सेनामें इस प्रकारकी विचारधारा चल रही है जैसा कि आपने अपने पत्रमें प्रकट किया है। मैं ऐसे विचारोंसे घृणा करता हूँ और उनकी कठोर निन्दा करता हूँ।

मैं नहीं समझ पाता कि मेरे किस आचरणसे आपको मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव रखनेका साहस हुआ·······यदि आपको अपने देशका, अपना या आनेवाली संततियोंका कुछ भी ध्यान है, यदि आपके हृदयमें मेरे प्रति कुछ भी सम्मानकी भावना है तो आप इस प्रकारके विचारोंको अपने मनसे निकाल दीजिये।

प्रणाम, मैं हूँ श्रीमान्! आपका आज्ञाकारी

सेवक

जार्ज वाशिंगटन

जार्ज वाशिंगटन अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति थे। दुबारा भी वे ही राष्ट्रपति चुने गये। तीसरी बार भी जनता सर्वसम्मतिसे उन्हींको राष्ट्रपति बनाना चाहती थी, परंतु उन्होंने यह कहकर उस पदको अस्वीकार कर दिया कि 'बार-बार एक ही व्यक्तिके राष्ट्रपति बननेसे कहीं राजतत्त्व या अधिनायकवादकी नींव न पड़ जाय।'

—राजेन्द्रप्रसाद जैन

(२)

सद्‌व्यवहारसे स्वभाव-परिवर्तन

कुछ वर्षों पहलेकी बात है—बाँकेबिहारी और बालमुकुन्द दो पड़ोसी थे। बाँकेबिहारी बड़े उग्र स्वभावका और तामसी प्रकृतिका था तथा बालमुकुन्द सर्वथा सौम्य स्वभाव एवं सात्त्विकी वृत्तिका। दोनोंके खेत सटे-सटे थे। खेतकी जमीनको लेकर बाँकेबिहारीने आपत्ति की—यद्यपि बालमुकुन्दका कोई दोष नहीं था, न उसकी नीयत ही खराब थी, पर बाँकेबिहारीने पटवारीसे मिलकर एक बीघा खेतकी जमीनकी झूठी माँग की और बालमुकुन्दपर उसे चोरीसे दबा लेनेका मिथ्या आरोप लगाया। बालमुकुन्दने अपनी सात्त्विकस्वभावा पत्नीसे सलाह करके सब कुछ सह लिया और बाँकेबिहारीकी माँग मिथ्या तथा अन्याययुक्त होनेपर भी चुपचाप जमीन उसे दे दी। इतना ही नहीं, अपनी भूल स्वीकार करके उसे उसके इच्छानुसार एक क्षमायाचनापत्र भी लिख दिया। इससे बाँकेबिहारीका दिमाग ठीक होना तो दूर रहा—वह और भी बिगड़ गया। 'लाभसे

लोभ बढ़ता है—इस नीतिके अनुसार बाँकेबिहारीने बालमुकुन्दको और भी दबाने और उसका हक मारनेका विचार किया । दोनोंके घरके बीचकी हिस्सेदारीकी एक ही दीवाल थी । बाँकेबिहारीने उस दीवालपर एकमात्र अपना ही अधिकार बताया और उसे तोड़नेका निश्चय किया । कहा, इस दीवालकी जगह दूसरी कमरेकी दीवाल उठाकर नया कमरा बनाना है। बालमुकुन्दने बड़े नम्र शब्दोंमें इसका विरोध किया। उसे सुनते ही वह आगबबूला हो गया और बालमुकुन्दको मारने दौड़ा। बालमुकुन्दको बचानेके लिये उसका सोलह वर्षका लड़का दीनानाथ बीचमें आ गया तो बाँकेबिहारीने उसीके सिरपर लाठी जमा दी । उसका सिर फट गया । बालमुकुन्द और उसकी स्त्रीको बड़ा दुःख हुआ, पर वे कुछ बोले नहीं। लड़केको अस्पताल ले गये ।

इधर दीनानाथकी इस दशाको देखकर बाँकेबिहारीका गुस्सेका पारा उतरा । उसने समझा—अब तो फौजदारी मुकदमेमें फँसना पड़ेगा । बालमुकुन्द सीधा आदमी है, उसे मना लिया जाय तो इस विपत्तिसे छुटकारा हो सकता है ।' वह तुरंत भागा हुआ अस्पताल पहुँचा और पश्चात्तापके आँसू बहाता हुआ बालमुकुन्दको एक तरफ एकान्तमें ले जाकर बोला—'भाई ! मैं बड़ा नीच हूँ, मुझसे बड़ी भारी गलती हो गयी, मेरे द्वारा क्रोधके आवेशमें यह कुकर्म बनगया। अब तुम ही मेरी जान बचा सकते हो । तुम कह दो कि पैर फिसलकर दीनानाथ गिर गया था, इससे सिरमें चोट लग गयी । तुम ऐसा कह दोगे तो मैं बच जाऊँगा । मुझे अब अपनी सारी भूलें नजर आ रही हैं । मैंने तुम्हारा सदा ही बुरा किया और तुमने सदा मेरा उपकार किया । अब मैं तुम्हारा कभी गुण नहीं भूलूँगा। तुम्हारी एक बीघा जमीन मैं वापस लौटा दूँगा । दीवालका दावा भी मेरा झूठा ही था । मैं अब वैसी कोई बात नहीं करूँगा । तुम मुझे बचाओ ।'

बालमुकुन्दकी स्त्री पास ही खड़ी थी। उसने सारी बातें सुनकर पतिसे कहा—'यह बेचारे इतना पश्चात्ताप तथा दुःख प्रकट कर रहे हैं, तो इनकी बात मान लीजिये, बच्चा भगवान्की दयासे अच्छा हो ही जायगा। इनको क्लेश हो, इससे हमें क्या मिलेगा ।' बालमुकुन्दका तो यह विचार था ही । उन्होंने यही डाक्टरसे कहा । पुलिसमें बयान देनेका तो कोई प्रसंग ही नहीं था; क्योंकि अब तो प्रसंग यह घरकी एक साधारण दुर्घटनामात्र रह गया था । दीनानाथके गहरी चोट नहीं थी, वह महीनेभरमें अच्छा हो गया। इस घटनाने और बालमुकुन्दके सद्व्यवहारने बाँकेबिहारीके जीवनमें विचित्र परिवर्तन ला दिया । उसका स्वभाव ही बदल गया । दोनों पड़ोसी बड़े प्रेमसे रहने लगे।

उमा संत की यहै बड़ाई । मंद करत सो करत भलाई ॥

—अवधराम मिश्र

(३)

परदुःखकातरता

ग्रीष्म ऋतु थी । दोपहरका समय था । भगवान् भास्कर अपनी प्रखर किरणोंके द्वारा धरतीको तपा रहे थे । कलकत्ता नगरीके बीच सड़कपर एक बुढ़िया सिरपर एक बड़ा बोझा उठाये चली जा रही थी ।

वृद्धावस्था, दोपहरकी झुलस देनेवाली गरमी एवं क्षीणकाय दुर्बल शरीर; इन सबने वृद्धाको थका दिया था। पसीनेसे लथपथ हाँफती हुई वह आगे बढ़ रही थी।

अन्तमें गरमीके मारे वह वृद्धा आगे बढ़नेमें असमर्थ हो गयी और प्रखर धूपमें ही राजमार्गके एक किनारे निःसहाय होकर बैठ गयी । अनेकों लोग आये-गये । किसीने वृद्धाकी ओर ध्यान नहीं दिया ।

कुछ समय उपरान्त उधरसे बाबू यतीन्द्रनाथ निकले । यतीन्द्रनाथ परपीड़ासे हार्दिक क्लेश अनुभव करनेवाले भारतीय युवक थे ।

उन्होंने देखा कि एक बुढ़ियाके आगे एक बोझा पड़ा है, पर उसे उठानेकी उसमें शक्ति नहीं रह गयी है।

यतीन्द्रनाथ तुरंत वृद्धाके पास गये और बोले—'माँ ! तुम आगे-आगे चलो—मैं यह बोझा तुम्हारे घरतक पहुँचा आता हूँ ।'

वृद्धा युवककी दयाभावनाको देखकर गद्गद हो उठी और अन्तःकरणसे उन्हें आशीर्वाद देने लगी । यतीन्द्रनाथने वह बोझा उठाकर वृद्धाके घर पहुँचा दिया।

यही नहीं—उन्होंने जब वृद्धाकी दीन दशा देखी तो द्रवित हो गये और वे उसे पाँच रुपया प्रति-मास देते रहे ।

आजके इस संकुचित स्वार्थप्रधान युगमें, जब कि मनुष्य परमार्थ-भावनासे तेजीके साथ दूर होते जा रहे हैं, यह सच्ची घटना सच्ची मानवताका चिर-नवीन संदेश सुनाती है । वास्तवमें असहायोंकी सेवा करना ही सच्चा धर्म है । —प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

(४)

ईमानदारीकी प्रतिष्ठा

कुस्तोर कोलियरी बहुत बड़ी थी । वह लगभग ७०० मजदूरोंकी जीविका चलाती । उसके मालिकने मजदूरोंकी जरूरतोंके सब सामान बेचनेका ठेका अपने साले भगवती बाबूको दे रक्खा था । भगवती बाबूने यह व्यवस्था की थी कि मजदूरोंको आवश्यक चीजें उधार दी जायँ और महीना पूरा होनेपर वे पैसे उनके वेतन-मेंसे सीधे काट लिये जायँ । इससे मजदूरोंको रोज-रोज पैसे नहीं देने पड़ते थे, वे झंझटसे बचते थे और अधिकांश अपनी जरूरतकी सभी चीजें सस्ती-महँगी इसी दूकानसे खरीद लेते थे । भगवती बाबू भी बड़े ही ईमानदार थे । उन्हें नफेके रुपयोंकी अपेक्षा अपनी प्रतिष्ठा कहीं अधिक प्यारी थी, इससे बहुत वर्षोंतक दूकान चलानेपर भी उन्होंने अपनी ईमानदारीपर जरा भी आँच नहीं लगने दी । अब उम्र बड़ी हो जानेपर उन्होंने दूकानके कामसे अपनेको हटाकर पूजा-पाठमें मन लगाया । दूकानका काम उनके पुत्रके हाथोंमें आ गया । उनका पुत्र निरञ्जन अपने पिताकी ईमानदारीकी बातको हँसीमें उड़ाकर काम-धंधेमें तरह-तरहकी अनुचित रीतियोंको आजमाने लगा ।

भगवती बाबू यद्यपि काम-काजसे निवृत्त होकर पूजा-पाठमें ही लगे रहते थे, परंतु दूकानकी साखकी ओर उनका ध्यान लगा रहता था और ईमानदारीसे प्राप्त की हुई प्रतिष्ठा—अपने जीवनकी अमूल्य कमाई—पुत्रकी लोभी वृत्तिसे नष्ट न हो जाय, इसकी उन्हें सदा चिन्ता लगी रहती थी ।

एक बार उन्होंने गुप्तरूपसे एक मजदूरको बुलाया और दूकानसे एक सेर चीनी मँगवायी । जब मजदूर चीनी लेकर आया तब भगवती बाबूने कोलियरीकी गोदामके तराजूसे उसे वजन करवाया । वह ठीक आध पाव कम थी । वे कुछ बोले नहीं और दूकानपर जाकर बैठ गये और जिस दिनसे पुत्रको काम सँभलाया था, उस दिनसे आजतक कौन-कौन चीनी ले गया था, इसकी एक फेहरिस्त बना ली । फिर, प्रत्येक ग्राहकको एक सेर चीनीके पीछे आध पाव चीनीके दाम लौटा दिये ।

परंतु पुत्रके इन अनुचित कामोंसे उनके मनपर बड़ी भारी चोट पहुँची थी । उसका घाव इतना गहरा था कि उन्हें प्रतिष्ठा खोकर दूकान रखनेकी ही इच्छा नहीं रही । इसलिये उन्होंने कोलियरीके मालिक अपने बहनोईको बुलाकर दूकान उन्हें वापस दे दी और पुत्रको कोलियरीके कार्यालयमें कड़ी मेहनतकी नौकरीमें लगा दिया । उनकी पत्नी तथा पुत्रने माफी माँगकर फिर ऐसा न करनेका वचन भी दिया और कुटुम्बकी भलाईके लिये बहुत अच्छी आमदनीवाली इस दूकानको न छोड़नेके लिये वे बहुत गिड़गिड़ाये भी, किंतु कुटुम्बके लिये अच्छी कमाईकी अपेक्षा उन्हें कुटुम्बकी प्रतिष्ठा विशेष महत्त्वकी वस्तु लगी और अपने निश्चयपर दृढ़ रहकर उन्होंने दूकान कोलियरीको सुपुर्द कर दी । पुत्र नौकरी करने लगा और भगवती बाबू अपनी साधारण

बचतके व्याजसे अत्यन्त सादगीके साथ अपना निर्वाह करते हुए भगवत्स्मरणमें मग्न हो गये। (अखंड आनन्द)

—शान्तिलाल बोले

(५)

मन्त्रका प्रभाव

घटना कुछ वर्ष पहलेकी है। एक बार हमारे यहाँ हैजाका प्रकोप बड़े जोरोंसे हुआ। रोज तीन-चार शव गाँवसे निकलते थे। महामारीका प्रकोप इतना बढ़ चला था कि बहुत बड़ा गाँव बिल्कुल जनशून्य-सा प्रतीत होता था। गाँवके पुरोहित लोग गाँव छोड़कर भाग चले थे। अधिकांश व्यक्ति तो कालके गालमें चले ही गये थे, शेष मारे भयके जिंदा ही मुर्दा बन गये थे। गाँवसे कुछ दूर एकान्तमें पीपल वृक्षके नीचे भगवतीका एक स्थान था। हमारे परिवारमें केवल पिताजी ही स्वस्थ थे। वे प्रतिदिन शामको दीप जलाने एवं आरती उतारनेके लिये भगवतीके स्थानपर जाया करते थे। दीप जलाते एवं आरती उतारते समय मन्दिरमें एक प्रकारका भयानक शब्द होता था। वापस आते समय फिर मन्दिरकी ओर पीछे देखना बड़े ही साहसका काम होता था।

महामारीके प्रकोपके समय एक दिन सबेरे एक जटाधारी, भस्म लपेटे नंगे साधुने गाँवमें प्रवेश किया। सबसे पहले मेरा ही घर पड़ा। वे आकर मेरे द्वारपर बैठ गये। उन्होंने सर्वप्रथम यही प्रश्न किया—'बच्चा! गाँव बहुत उदास-सा लग रहा है। तुम भी उदास लगते हो, क्या बात है?'

पिताजीने सारी बातें बतलायीं। उन्होंने गाँवमें जाकर आश्वासन दिया तथा नीचे लिखे मन्त्रोंका सबेरे सात सौ, दोपहरको सात सौ तथा शामको भी सात सौ बार घीके हवनसहित जप किया। इसका परिणाम दो ही दिनमें जादूकी तरह हुआ। गाँवके सभी लोग स्वस्थ हो गये। तबसे हमारे गाँवमें अबतक महामारी नहीं आयी।

महात्माजीने बतलाया कि इस मन्त्रको अपने घरके प्रत्येक द्वारपर कागजपर लिखकर साट देनेसे महामारीका प्रकोप नहीं होता है। इस मन्त्रको गुप्त रखना चाहिये। नास्तिकोंको बतलानेसे महत्त्व कम हो जाता है। हमलोगोंको अनेकानेक उदाहरणोंसे इस मन्त्रपर पूर्ण विश्वास है।

मन्त्र—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥

—श्रीचन्द्रेश्वर 'निर्मल' चोरभा

(६)

एकान्तरा ज्वरकी रामबाण दवा

एकान्तरा ज्वरके लिये 'अपामार्ग' रामबाण दवा है। मेरा लगभग तीस वर्षका अनुभव है। सैकड़ों रोगियोंपर इसका उपयोग करके मैं लाभ उठा चुका हूँ। प्रयोगकी विधि निम्नलिखित है—

जिस रविवारको पुष्य नक्षत्र हो, उससे एक दिन पहले 'अपामार्ग' वनस्पतिके पेड़के पास जाकर जलसे उसे स्नान करावे, फिर उसपर रोली (कुंकुम) चढ़ावे, तदनन्तर तिल-चावल चढ़ाकर उसकी जड़में नालका रक्षासूत्र बाँध दे और फिर यह कहकर उसे निमन्त्रण दे आवे कि मैं अपनी कार्यकी सिद्धिके लिये कल प्रातःकाल आपको लेने आऊँगा। फिर दूसरे दिन पुष्यनक्षत्रयुक्त रविवारको प्रातःकाल सूर्योदयके समय उसकी मूल (जड़को) बँधे हुए रक्षासूत्रसमेत उखाड़कर ले आवे। इतना ध्यान रहे कि जड़ उखाड़कर लेते समय कोई टोकाटाँकी न करे कि तुम क्या कर रहे हो?

इस प्रकार लायी हुई अपामार्गकी जड़ घरमें रक्खी रहे। यह वर्षोंतक काममें ली जा सकती है। एकान्तरा ज्वरके रोगीको जिस दिन ज्वर आनेकी पारी हो, उस दिन ज्वर आनेके एक-दो घंटा पहले अपामार्गकी थोड़ी-सी जड़ उसी रक्षासूत्रमें बाँध सात गाँठ दे दे। फिर गूगलका या गौ-घृतका धूप देकर दक्षिण भुजा या कंठमें बाँध दे। उसी दिनसे ज्वर आना बंद हो जायगा। कदाचित्

उस दिन ज्वर आया तो सम्भव है बहुत जोरसे आवे। घबराना नहीं चाहिये। दूसरी पारी बिल्कुल नहीं आयेगा।

इस जड़ीका उपयोग केवल सेवाके लिये ही करे। पैसा कमानेके लिये कदापि न करे।

—देवीप्रसाद उर्फ छोटेलाल दूबे, रायपुरदरवाजा बाहर काँकरिया रोड, अहमदाबाद

(७)

ईश्वरप्रार्थनाका फल

जिनकी घटना है—वे नवयुवक इरविन अस्पताल दिल्लीमें एक्सरेकी ट्रेनिंग ले रहे हैं—उनका नाम श्रीहरिस्वरूप वर्मा है। भगवान्‌की प्रार्थनासे उनके प्राण कैसे बचे—यह उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये।

वे लिखते हैं—

'अभी ६ ता० की (रात) नौ बजे जानेवाली मेलगाड़ीसे मैं दिल्लीसे बरेली चौदहवींका फार्म भरने जा रहा था। भीड़ होनेकी वजहसे दरवाजेके पास खड़ा हो गया। वहाँ एक और आदमी खड़ा था और उसका एक साथी लेटा हुआ था वहीं। मैंने उनके पूछनेपर बता दिया कि मुझे बरेली जाना है। मुरादाबाद स्टेशनके बाद दरवाजेपर खड़े हुए आदमीने एक जहरीली सिगरेटका धुँआ फेंका। मेरे सिरमें दर्द होने लगा। फिर मुझे पता नहीं क्या हुआ, आगे रामपुर स्टेशनपर उन्होंने मुझे उतार लिया। मुझे बेहोशीकी हालतमें रिक्शेमें बैठाकर वे शहरसे तीन मील दूर ले गये। रिक्शेवालेको पैसा देकर वापस भेज दिया। उस समय मुझे कुछ होश आ गया था। मैंने उनसे पूछा—'तुम कौन हो? मुझे किस लिये यहाँ लाये हो?' उन्होंने कहा—'तुम्हारी तबियत खराब है। हम अपने घर ले जा रहे हैं।' मैंने मना किया। वे जबरदस्ती मुझे सड़कसे मिले हुए खेतमें ले आये। एकने मेरा गला पकड़ लिया और चाकू गलेपर रखकर कहा—'निकालो क्या है तुम्हारे पास।' मैंने पर्स निकालकर दिया। उसमें केवल बीस रुपये थे। उन्होंने पैन्टकी जेबें देखीं, उनमें कुछ और रुपये थे। एक नयी (१५०) की घड़ी थी। सब लेकर कमीज-पैन्ट उतरवाकर वे चलने लगे। फिर एकने कहा—'इसने रिक्शेवालेको पहचान लिया है—कोई गड़बड़ न हो जाय, इसलिये खत्म कर दो।' मैंने उनसे कहा—'तुमको सामान लेना है ले लो।' लेकिन वे नहीं माने। मैंने भागने आदिकी कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ। उन्होंने मेरा एक टाँगसे हाथ बाँध दिया। और मारनेकी तैयारी कर दी। उनमेंसे एक गर्दनमें चाकू मारने ही वाला था। मैंने अपना अन्तिम समय समझकर उनसे प्रार्थना की कि 'मुझे एक मिनट अपने भगवान्‌का नाम तो ले लेने दो।' आर्तस्वरसे प्रार्थना की अपने सरकारसे। इतनेमें ही एक मोटर-ट्रकके आनेकी आवाज सुनायी दी। सड़कपर ट्रक जा रही थी। मैंने 'रोकना जरा' ऐसी आवाज मारी। ट्रक मेरे प्रभुकी प्रेरणासे वहीं रुक गयी। वह आदमी, जो चाकूवाला था, एकदम भाग गया और दूसरा सामानपर झपटा और हाथमें कुछ सामान लेकर भगा। घड़ी और पर्स गिर गये उसके हाथसे। बाकी रुपया तथा खेरीज लेकर वह भाग गया। मैं ट्रकमें बैठकर स्टेशन आ गया।'

इस काण्डके होनेमें लगभग आध-पौन घंटा लगा। तबतक कोई ट्रक वगैरह नहीं आयी। वह तो प्रभुसे जब प्रार्थना की तभी आयी। दूसरे, ट्रक इतनी तेजीसे चलती है कि वह कोई आवाज सहजमें सुन ही नहीं सकती। यह तो सब प्रभुकी ही लीला है। प्रभु ही अपने जनोंकी सदा-सर्वदा रक्षा करते रहते हैं। प्रभुने प्राण-दान दिया तथा सब सामान अटैचीसहित, जिसमें उस नवयुवकके कागजात वगैरह बड़े कामकी चीजें थीं, सब बच गयी। थोड़ेसे रुपये खेरीज़ ही वे ले गये।

—बृजनाथशरण अरोड़ा

‘कल्याण’के पुराने छत्तीस विशेषाङ्कोंमेंसे केवल पाँच ही प्राप्य हैं

१—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क

पृष्ठ-संख्या सूचीसहित ७०४, चित्र बहुरंगे १७, दोरंगा १, सादे ६ और रेखा-चित्र १२०, कुल १४४, मूल्य ७.५०, सजिल्द ८.७५।

३७वें वर्षके इस विशेषाङ्कमें गोलोकविहारी परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा श्रीराधिकाजीकी दिव्य गोलोक-लीलाका तथा उनकी अवतार-लीलाका बड़ा ही सुन्दर और विशद वर्णन है। उनके तत्त्व, महत्त्व तथा मधुर लीला-चरित्रोंके साथ ही सब देवताओंकी एकता, सारी शक्तियोंकी एकता, भक्तितत्त्व तथा बहुसंख्यक चमत्कारपूर्ण लाभदायक स्तोत्रों, कवचों तथा मन्त्रोंका विशद विवेचन है।

यह अङ्क सभीके लिये परमोपयोगी तथा संग्रह करने योग्य है।

२—संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क (दूसरा संस्करण)

पृष्ठ-संख्या ७०४, चित्र सुन्दर बहुरंगे १७, दोरंगा १, सादे १२ तथा रेखा-चित्र १३८, कुल १६८। मूल्य ७.५०।

३६वें वर्षका यह ‘संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क’ प्रथम बार १,३१,००० छापा गया; परंतु उसकी माँग इतनी अच्छी रही कि सब प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गयीं और हजारों पुराने ग्राहकोंको भी अङ्क न मिल सके। इसलिये कामकी भारी असुविधा होनेपर भी २०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण छापना पड़ा था।

यह विशेषाङ्क सुप्रसिद्ध शिवपुराणके साररूपमें सरल हिंदी भाषामें बहुत ही सस्ता है। इसमें भगवान् शिवकी बड़ी ही विचित्र मधुर लीलाओंका, भक्तवत्सलताका और उनके अवतारोंका तथा योग-भक्तिके तत्त्वोंका बड़ा ही विशद और सर्वोपयोगी वर्णन है। कथाएँ बड़ी ही रोचक तथा प्रभावोत्पादक हैं।

३—मानवता-अङ्क

पृष्ठ-संख्या ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर ३९ बहुरंगे, एक दुरंगा, १०१ इकरंगे और ३९ रेखाचित्र, कुल १८०। डाकव्ययसहित मूल्य ७ रु० ५० नये पैसे।

देशभरमें चुने हुए महात्माओं और विद्वानों तथा विदेशी महानुभावोंके मानवतासम्बन्धी सद्विचारोंके संग्रहसे सम्पन्न और सबके द्वारा प्रशंसित इस विशेषाङ्ककी एक प्रति अवश्य संग्रहणीय है।

४—हिंदू-संस्कृति-अङ्क

पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, डाकव्ययसहित मू० ६.५० नये पैसे।

इस अङ्कमें महान् हिंदू-संस्कृतिके प्रायः सभी विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप तथा महत्त्व, हिंदूधर्म, वर्णाश्रम, हिंदू-संस्कृतिकी व्यापकता, हिंदू-संस्कृतिमें त्याग और भोगका समन्वय, रामराज्यका स्वरूप आदि विषयोंपर बड़े-बड़े विद्वानों तथा अनुभवी पुरुषोंके लेख हैं।

इसके अतिरिक्त भगवान्के, अवतारोंके, देवताओंके, आदर्श ऋषि-महर्षियोंके, परोपकारी भक्त, राजा तथा सत्पुरुषोंके, आचार्य, महात्मा और भक्तोंके एवं आदर्श हिंदू-नारियोंके बहुत-से पवित्र चरित्र हैं।

५—संतवाणी-अङ्क

पृष्ठ-संख्या ८००, तिरंगे चित्र २२, इकरंगे चित्र ४२, संतोंके सादे चित्र १४०, कुल चित्र २०४, मूल्य डाकव्ययसहित ७ रु० ५० नये पैसे।

इस अङ्कमें ५८५ संतोंकी पवित्र, जीवन-निर्माणमें सहायक, जीवनको उच्चस्तरपर पहुँचा देनेवाली निर्मल वाणियोंका अनेक गद्यों एवं पद्योंमें अभूतपूर्व संकलन है।

व्यवस्थापक—**कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

रजि० सं० एल्० १७५

हम कहाँ जा रहे हैं ?

नभमें शब्द भर रहे सारे 'प्रगति', 'विकास' और 'उत्थान'।
'नवजागरण' 'नवोल्लास' बनती 'नव-नव योजना' महान् ॥

पर हो रहा इन्हीं नामोंपर 'पीछे हटना', 'पतन', 'विनाश'।
'नव जागरण' 'योजना' सारी, है 'प्रवंचना' 'नव उल्लास' ॥

'सदाचार'का स्थान ले चुका 'अनाचार' अति 'भ्रष्टाचार'।
'त्याग' और 'कर्तव्य' छिप गये, आये 'अर्थ' और 'अधिकार'॥

'सत्य' और 'अस्तेय' उठ गये, बढ़ा 'झूठ' 'चोरी' सर्वत्र।
पैसेपर बिक रहा सहज ईमान, धर्म खो अत्र परत्र ॥

पैसा ही बन गया सभी कुछ कर्म-धर्म-साधन-भगवान।
सत्पथ, न्याय छोड़ सब, मानव भजते उसे त्याग ईमान ॥

बिकने लगी दया, सेवा, सब देशभक्ति, ईश्वरकी भक्ति।
नीच स्वार्थ-साधनके पथ सब बने, बढ़ रही विषयासक्ति ॥

नकली दवा, दूध-घी नकली, नकली सब खाद्यादि पदार्थ।
बनने बिकने लगे अनर्गल, भूले सभी स्वार्थ-परमार्थ ॥

खान-पानकी मिटी शुद्धता, बढ़ा अशुचि आमिष आहार।
मांस-मत्स्य-अंडोंके नव नव होने लगे बृहद् व्यापार ॥

खुलने लगे कसाईखाने बड़े बड़े वैज्ञानिक आज।
माइ-बाप सरकार कर रही घोर जीवहिंसा तज लाज ॥

नये-नये दानवी करोंकी हुई भयंकर अति भरमार।
प्रजा प्रपीड़ित हुई, बन रही डाकू-सी नृशंस सरकार ॥

बने अधिक व्यापारी, प्रायः अधिकारी तन-मनसे चोर।
तेजीसे बढ़ रहा 'चोर-चोरी-पूजन' अब चारों ओर ॥

घोर 'समाजशत्रु सीनेमा' राष्ट्र-चरित्र कर रहा नाश।
किंतु बढ़ रहा आग-सरीखा करता सहज विवेक-विनाश ॥

बढ़ी, बढ़ रही नित्य भयानक महँगी मुँह बाये घनघोर।
जीवन बना क्लेश-कंटकमय छाये दुःख-मेघ सब ओर ॥

बढ़ी भयानक गोहत्या अब रहा न गौपालनका भाव।
कुत्ते लगे प्यारसे पलने, बड़े बड़े घर, छाया चाव ॥

मिटने लगी सती-मर्यादा, पातिव्रत्य, त्याग-बलिदान।
तितली बनी बालिका तरुणी इधर-उधर उड़ रही अमान ॥

कुल-कन्या, कुल-बधू छोड़कर कुल-लज्जा मर्यादा मान।
जनसमूहमें लगी नाचने, अंग दिखाने, करने गान ॥

काम क्रोध लोभ तीनों हैं आत्मविनाशक नरकद्वार।
आज हमारे सब कामोंमें है इनका प्रभाव-विस्तार ॥

परम लक्ष्य मानव-जीवनका एकमात्र जो है भगवान्।
भूल उसे, सब हुए दुःखमय भोगोंमें रत जड़-विद्वान् ॥

पाप दीखता पुण्य, दीखता अनाचार ही अब आचार।
तमसे ढकी बुद्धि करती उलटा निर्णय, विपरीत विचार ॥

इसीलिये हम पतन-गर्तमें गिरे जा रहे, कर अभिमान।
पता नहीं, अब कहाँ रुकेंगे, कब सुबुद्धि देंगे भगवान ॥